वर्ष ४५

वैदिक धर्म

अंक ६

क्रमांक १८५ : जून १९६४

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

विषयानुक्रमणिका

संस्कृत-पाठ-माला

(चौबीस भाग)

[संस्कृत-भाषाके अध्ययन करनेका सुगम उपाय]

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

भाग १–३ इनमें संस्कृतके साथ साधारण परिचय करा दिया गया है।

भाग ४ इसमें संधिविचार बताया है।

भाग ५-६ इनमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया है।

भाग ७–१० इनमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है।

भाग ११ इसमें "सर्वनाम" के रूप बताये हैं।

भाग १२ इसमें समासोंका विचार किया है।

भाग १३–१८ इनमें क्रियापद-विचारकी पाठविधि बताई है।

भाग १९–२४ इनमें वेदके साथ परिचय कराया है।

प्रत्येक पुस्तकका मूल्य ॥) और डा. व्य. ≠)

२४ पुस्तकोंका मूल्य १२) और डा. व्य. १।)

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल,
पो. 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

"वैदिक धर्म"

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६२, विदेशके लिये रु. ६.५०

डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल,
पो.– 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आर्य धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२)	.५०
३ सामवेद संहिता	२)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	२)
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१ २५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अर्थका ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये देवता-**मंत्र-संग्रह** मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता- (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत सहिता- (द्वितीय भाग)

अश्विनौ आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव। इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१ ७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता- (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)

(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि	,,	,,	२)	.२५
३ शुनःशेप	,,	,,	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	१)	.२५
५ काण्व	,,	,,	२)	.२५
६ सव्य	,,	,,	१)	.२५
७ नोधा	,,	,,	१)	.२१
८ पराशर	,,	,,	१)	.२५
९ गोतम	,,	,,	२)	.३७
१० कुत्स	,,	,,	२)	.३७
११ त्रित	,,	,,	१.५०	.३१
१२ संवनन	,,	,,	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	.५०	.१९
१४ नारायण	,,	,,	१)	.२५
१५ बृहस्पति	,,	,,	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी	,,	,,	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि	,,	,,	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ	,,	,,	७)	१)
२० भरद्वाज	,,	,,	७)	१.५०

मन्त्री— 'स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट— 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' [जि. सूरत]

वैदिकधर्म

स्वातंत्र्यकी कामना

अग्ने जातान् प्र णुदा मे सपत्नान्
प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवः
अनागसस्ते वयमदितये स्याम ॥

(अथर्व. ७।३४।१)

हे अग्ने ! (मे जातान् सपत्नान् प्रणुद) मेरे उत्पन्न हुए शत्रुओंको दूर कर । हे (जातवेदः) ज्ञानके उत्पादक देव ! (अ-जातान् प्रति नुदस्व) खुले रूपमें शत्रुता न रखकर अन्दर ही अन्दर द्वेष करनेवाले शत्रुओंको भी हटा दे । (ये पृतन्यवः अधस्पदं कृणुष्व) जो शत्रु हों उन्हें अपने पैरसे दबा दे, (अन्-आगसः वयं) पापसे रहित होकर हम (अदितये स्याम) स्वातंत्र्यके संरक्षणके लिए सदा तैयार रहें ।

स्वातंत्र्य प्राप्तिकी अपेक्षा उसका संरक्षण एक कठिन काम है । स्वातंत्र्यलक्ष्मीको अपने राष्ट्रमें स्थिर रखनेके लिए हर मनुष्यको हमेशा तैयार रहना पडता है । स्वतंत्र राष्ट्रपर हर अन्य राष्ट्रोंकी गृध्रदृष्टि लगी रहती है और ऐसे अवसरकी ताकमें रहते हैं कि स्वतंत्र राष्ट्र कब गफलतमें पडे और कब हम हडपें । इसलिए उस स्वतंत्र राष्ट्रको ऐसा सशक्त एवं सबल बनाना पडता है कि वह हर शत्रुका मुकाबला करनेमें समर्थ हो । ऐसे सबल राष्ट्रकी एवं मातृभूमिके सच्चे भक्तोंकी परमेश्वर भी सहायता करता है ।

स्वाध्यायमण्डलके प्रकाशन

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

अध्याय	१ श्रेष्ठतम कर्मका आदेश	१.५०	.१२
अध्याय	३० मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन	१)	.१९
अध्याय	३२ एक ईश्वरकी उपासना	१.५०	.१२
अध्याय	३६ सच्ची शांतिका सच्चा उपाय	१.५०	.१२
अध्याय	४० आत्मज्ञान-ईशोपनिषद्	१)	.३७

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

(१ से २० काण्ड पांच जिल्दोंमें)

इनमें मंत्र, अर्थ, स्पष्टीकरण और विषयवार वैदिक सूक्तोंका संग्रह है। हरएक पाठक इनसे लाभ उठा सकता है।

प्रथम विभाग	१ से ३ काण्ड	१०)	१)
द्वितीय विभाग	४ से ६ काण्ड	१०)	१)
तृतीय विभाग	७ से १० काण्ड	१०)	२)
चतुर्थ विभाग	११ से १८ काण्ड	१०)	१)
पञ्चम विभाग	१९ और २० काण्ड (छप रहा है)	१०)	२)

एकदम सब भाग लेनेवालोंको पांचों भागोंका मूल्य ४०) रु. होगा। डा. व्य. पृथक्.

सामवेद (कौथुम शाखीयः)

सामवेदके गायकके ये ग्रंथ हैं। इनके गायन करनेसे अद्भुत मानस शान्ति प्राप्त होती है।

१ ग्रामेगेय (वेय, प्रकृति)

गानात्मकः-आरण्यक गानात्मकः

प्रथमः तथा द्वितीयो भागः ५)	१)	
२ ऊहगानं— (दशरात्र पर्व)	१)	.२५

(ऋग्वेदके तथा सामवेदके मंत्रपाठोंके साथ ६७२ से ११५२ गानपर्यंत)

३ ऊहगान— (दशरात्र पर्व)	.५०	.१२

(केवल गानमात्र ६७२ से १०१६)

उपनिषद् भाष्य ग्रंथमाला

इन उपनिषदोंके भाष्योंमें यह बताया है कि यहां ब्रह्मज्ञानके साथ साथ उत्तम अध्यात्मावेष्टित मानवी व्यवहार अर्थात् वैयक्तिक, सामाजिक, राजकीय तथा जागतिक व्यवहार निर्दोष रीतिसे किस तरह सिद्ध हो सकता है। यह सब तत्त्वज्ञान इन भाष्योंमें है। यह किसी अन्य ग्रंथोंमें नहीं मिलेगा। इसलिये सबको ये ग्रंथ पढने आवश्यक हैं।

१ ईश उपनिषद्	२)	.३७
२ केन उपनिषद्	१.७५	.३१
३ कठ उपनिषद्	१.५०	.२५
४ प्रश्न उपनिषद्	१.५०	.२५
५ मुण्डक उपनिषद्	१.५०	.२५
६ माण्डूक्य उपनिषद्	.५०	.१२
७ ऐतरेय उपनिषद्	.७५	.१९
८ तैत्तिरीय उपनिषद्	१.५०	.२५

९ श्वेताश्वतर उपनिषद् (छप रहा है)

श्रीमद्भगवद्गीता

इस गीता भाष्यमें अनेक गूढ विषयोंका स्पष्टीकरण है। राज्यव्यवहारके आध्यात्मिक संकेत यहां स्पष्ट रीतिसे बतायें हैं।

(हिंदी-गुजराती-मराठी-अंग्रेजी भाषाओंमें मिलेगी।)

१ पुरुषार्थबोधिनी टीका (एक जिल्दमें)—	११.५०	२.५०
,, (तीन जिल्दोंमें) अध्याय १ से ५	५)	१.२५
,, अध्याय ६ से १०	५)	१.२५
,, अध्याय ११ से १८	५)	१.२५
२ श्रीमद्भगवद्गीता लेखमाला भाग १-२ और ७	३.७१	१.२५
३ भगवद्गीता श्लोकार्धसूची	.७५	.१२
४ गीताका राजकीय तत्त्वलोचन	१)	.३७
५ श्रीमद्भगवद्गीता (केवल श्लोक और अर्थ)	.५०)	.१२
६ श्रीमद्भगवद्गीता (प्रथम भाग) लेखक श्री गणेशानंदजी	१)	.२५

गो-ज्ञान-कोश

गो-ज्ञान-कोश (प्रथम भाग)	६)	१.५०
गो-ज्ञान-कोश (द्वितीय भाग)	६)	१.५०

गौके विषयमें वेदमंत्रोंमें जो उत्तम उपदेश है वहसब इन दो विभागोंमें संग्रहित किया है। जो गौके विषयमें वेदका अमूल्य उपदेश जानना चाहते हैं वे इन भागोंको अवश्य पढें।

भारतीय जन-हृदयका देवता जो आज सचमुच देवता बन गया।

•

हमारे लोकप्रिय प्रधानमंत्री श्री नेहरूके स्वर्गारोहणके हृदयविदारक समाचारसे न केवल भारत ही, अपितु सारा ही संसार आज स्तंभित हो गया है। गोया यह कहना ही ज्यादा ठीक होगा कि मृत्युके विकराल और निर्मम हाथोंने श्री नेहरूको नहीं छीना, अपितु शान्तिके अग्रदूत, बेसहारोंके सहारे, वर्णभेदके अत्याचारोंसे पीड़ित मानवताके एकमेव आश्रयस्थान और विश्वकी जनताके हृत्प्रतिष्ठ देवताको ही छीन लिया है।

श्री नेहरूका जीवन सच्चे शब्दोंमें एक कुरुक्षेत्र था। उनका जीवन कर्ममय बन चुका था। उनके सामने यदि कोई उद्देश्य था, तो वह केवल "राष्ट्र" था। विश्वमें आज लोग भारतको "गांधी और नेहरू" के देशके रूपमें ज्यादा जानते हैं। उनके लिए भारतका अर्थ नेहरू और श्री नेहरूका अर्थ भारत है। इतनी तन्मयता श्री नेहरूकी भारतके साथ थी।

श्री नेहरूका जन्म इलाहाबादमें १४ नवम्बर सन् १८८९को एक सम्पन्न घरानेमें हुआ था। उनके पिता श्री मोतीलाल नेहरू एक सुप्रसिद्ध वकील एवं देशभक्त थे। उन दिनों वकीलोंके संबंधमें दो व्यक्तियोंके नामकी गूंज थी, एक इलाहाबादके मोतीलाल नेहरू और दूसरे कलकत्तेके श्री देशबन्धु चित्तरंजनदास। ये दोनों ही देशभक्तोंमें अग्रगण्य थे।

श्री नेहरूका अधिकांश शिक्षण केम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें हुआ, पर उनको वास्तविक शिक्षा प्राप्त हुई भारत आने पर ही। भारतकी दासता, भारतीयोंके दैन्य, उनके प्रति अत्याचार आदि अनेकों घटनाओंने उनके सामने एक ऐसा बीभत्स दृश्य उपस्थित किया कि यहां आनेपर उनका एकमात्र लक्ष्य रह गया "स्वातंत्र्य-प्राप्ति।" पश्चात् वे कॉंग्रेस संगठनके प्रमुख बने और उसी दौरानमें गांधीजीके सम्पर्कमें आए। गुरुने शिष्यको पहचाना और शिष्यने गुरुके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर दिया। गांधीजीने श्री नेहरूमें भारतके भविष्यका दर्शन किया और शान्तचित्तसे उन्हें अपना उत्तराधिकार सौंप कर उस लोककी राह पकडी। तबसे लेकर आज तक श्री नेहरू गांधीवादके आदर्श बने रहे।

उनका हृदय विशाल था। निष्कपट, निश्छल और निर्दम्भ हृदयके थे वे। स्वयं धोखा खाया, पर दूसरोंको कभी धोखा नहीं दिया। ऐसे ही लोगोंके विषयमें महाकवि भवभूतिने कहा था—

> वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
> लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति॥

"महापुरुषोंके चित्त वज्रसे भी कठोर और फूलसे भी कोमल होते हैं, अतः ऐसे लोगोंके हृदयके थाहका पता लगाना सर्वथा असंभव है।"

ऐसे नेता एवं लोकप्रिय महापुरुषका असमयमें ही चले जाना वस्तुतः भारतीयोंका दुर्भाग्य ही है। अब आगे हम भारतीयोंका यह कर्तव्य है कि हम सभी उनके बताये मार्ग पर चलकर देशकी उन्नति करें और भारतको सिरमौर बनाएं। यही उनकी वास्तविक श्रद्धांजलि है।

वैदिक गोमहत्त्वम्

(लेखक— श्री जगन्नाथ शास्त्री, न्यायभूषण, विद्याभूषण)

प्रिय पाठकवृन्द ! स्वतंत्र भारतमें भी यदि गोवध परित्याग तथा गोरक्षा पर ध्यान नहीं दिया जाता। तो फिर गोवंशवृद्धिके स्थानपर गोवंश ह्रास ही होता चला जाएगा। एक दिन ऐसा होगा कि गोमात्रका दर्शन भी दुर्लभ हो जाएगा। जिस गौको श्री कृष्ण भगवान्ने अर्जुनके प्रति अपनी उत्तम विभूतियोंमें कहा है—

धेनूनामस्मि कामधुक् ॥ भग. १०।२८

इन शब्दोंका समर्थन वेदमें भी देखिये--

एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु ।
एनीः श्येनीः सरूपा विरूपास्तिलवत्सा
उप तिष्ठन्तु त्वात्र ॥ अथर्व. १८।४।३३

अर्थ— हे जीवात्मन् ! (एताः धेनवः) आगे बताई हुई दुग्ध देनेवाली गौएं (ते असौ) तुझ प्राणीके रक्षा निमित्त (कामदुघा भवन्तु) कामधेनु रूप सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली हों। चाहे गौ (एनीः) कपिला हो, चाहे (श्येनीः) श्वेत वर्णवाली हो, चाहे (सरूपाः) समान रूपवाली हो, (विरूपाः) विविध रूपवाली अर्थात् चितकबरी हो, चाहे (तिलवत्साः) तिलसदृश श्यामवर्णोपहित बछडोंवाली हो, इस प्रकारकी सब गौएं (त्वा) तुझ मनुष्यको (अत्र) इस भूमिपर अथवा इस मनुष्य जन्ममें (उपतिष्ठन्तु) प्राप्त हों। तथा वेदमें इस गौको संसार धारक और धारणशक्ति माना है।

धाना धेनुरभवत् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥
अथर्व. १८।४।३२

अर्थ— (धाना) जीव मात्रके धारण पोषण करनेमें समर्थ (धेनुः अभवत्) गौ है और (अस्या वत्सः) इसका बछडा (तिलोऽभवत्) तिलरूप होकर सबसे स्नेह करता है अर्थात् कृषकका कृषिका साधन हैं, अतः (यमस्य राज्ये तां अक्षिता उपजीवति) यम नियममें रहनेवाले राजाके राज्यमें अथवा परमात्माके राज्यरूप संसारमें उस गौमाताके अक्षीणरूपमें अर्थात् अवध्य रूपमें सारा संसार अपनी जीवनवृत्ति चलाता है अतः इस गौमें ही धारणा शक्ति है। अतः गौ सर्वदा अवध्य है। इसी गौमाताके प्रभावसे ही सारा राष्ट्र सुखी रह सकता है। तथा च–

एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना
रोहिणीर्धेनवस्ते। तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना
विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥ अथर्व. १८।४।३४

अर्थ— लाल, कपिला और हरित रंगवाली, श्वेत, कृष्ण और लाल रंगवाली गौएं (अस्य धानाः) इस मनुष्य मात्रका धारण, पोषण और पालन करनेवाली हैं। हे मनुष्य ! ऐसी गौएं (ते) तुझे प्राप्त हों। (तिलवत्साः) संसारमें सबसे स्नेहसे प्रेम करनेवाले बछडोंवाली गौएं (अस्मै) इस लोकके लिए (ऊर्जं दुहानाः) परम पुष्टिकारक रसको दुहती हुई अर्थात् जीवमात्रको अपना दुग्धरस प्रदान करती हुई (विश्वाहा अनपस्फुरन्तीः) सब प्रकारसे निर्भय निराकुल आपत्ति रहित सुखी (सन्तु) होवें अर्थात् गौओंपर कोई आपत्ति न आवे।

अतः गौ वेदाधारसे अवध्य, रक्ष्य, पोष्य है। वेदमें गौको विश्वरूप कहा है अथर्व. कां. ९ सू. ७ मं. १–२६ तक यथा–

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृंगे इन्द्रः शिरो,
अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् ॥ १ ॥
सोमो राजा मस्तिष्को
द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः ॥ २ ॥
विद्युज्जिह्वाः मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः
कृत्तिका स्कंधा घर्मो वहः ॥ ३ ॥
विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं
विधरणी निवेष्यः ॥ ४ ॥
श्येनः क्रोडो अन्तरिक्षं पाजस्यं
बृहस्पतिः ककुद् बृहतीः कीकसाः ॥ ५ ॥

देवानां पत्नीः पृष्ठ्य उपसदः पर्शवः ॥ ६ ॥
मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च
दोषणी महादेवो बाहू ॥ ७ ॥
इन्द्राणी भसद् वायुः पुच्छं पवमानो बालाः ॥८॥
ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू ॥ ९ ॥
धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जंघा गंधर्वः
अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः ॥ १० ॥
चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् ॥ ११ ॥
क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥ १२ ॥
क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः ॥ १३ ॥
नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनयित्नुरूधः ॥१४
विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि
नक्षत्राणि रूपम् ॥ १५ ॥
देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ॥१६॥
रक्षांसि लोहितं इतरजना ऊवध्यम् ॥ १७ ॥
अभ्रं पीबो मज्जा निधनम् ॥ १८ ॥
अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना ॥ १९ ॥
इंद्रा प्राङ् तिष्ठन्दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥ २० ॥
प्रत्यङ् तिष्ठन् धातोदङ् तिष्ठन् सविता ॥ २१ ॥
तृणानि प्राप्तः सोमो राजा ॥ २२ ॥
मित्र ईक्षमाणः आवृत्त आनंदः ॥ २३ ॥
युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः
प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् ॥ २४ ॥
एतद्वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् ॥ २५ ॥
उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः
पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद ॥ २६ ॥

भावार्थ यह है कि इस सूक्तमें गौका महत्त्व वर्णन किया है। यहां गौ शब्दसे गाय और बैल दोनोंका ग्रहण होता है यह स्पष्ट है। गौके अंगोंमें संपूर्ण देवताओंका निवास है। गौ ही सब देवोंका रूप बन जाती है। वैदिक धर्म (हिंदु-धर्म) में गौका इतना महत्त्व है। गायका दूध, दही, मक्खन, घी, छाछादिके सेवन करनेसे देवताओंका सत्व सेवन करनेका श्रेय प्राप्त होता है। ऐसे ही गोमूत्र और गोबर सेवन करनेसे शरीर शुद्ध होता है। वैदिक धर्मी (हिन्दु) लोग गौके ऐसे महत्त्वको जानकर ही गौकी रक्षाका सम्बन्ध विश्वरूप परमात्मसेवन समझते हैं।

गौ ही भूमि, अन्तरिक्ष और दिशाका रूप है

जैसे मनुष्य, पृथिवी, अन्तरिक्ष दिशाके विना मनुष्य संसारमें नहीं रह सकता, वैसे ही गौके विना मनुष्य जीवन दुर्लभ है। यथा–

पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः।
सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम्।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥
अथ. ४।३९।२

अर्थ–– पृथिवी गौ है पृथिवी रूप गौका बछडा अग्नि है, जिसके द्वारा अन्न, जल, दीर्घायु, पुष्टि और धन प्राप्त होते हैं। जैसे गौ अपने दुग्ध द्वारा और अपने पुत्र बैल द्वारा अन्नादि उत्पन्न करके प्रजाको सुख देती है, वैसे पृथिवी भी। जैसे भूमिके विना मनुष्य किसी कामका नहीं वैसे गौके विना भी मनुष्य किसी कामका नहीं है। तथा च––

अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः सा मे–
अथर्व. ४।३९।४

द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः। सा मे–
अथर्व. ४।३९।६

दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः। सा मे–
अथर्व. ४।३९।८

वेदके इन मन्त्रोंमें जैसे भूमि, अन्तरिक्ष, आकाश और दिशाको संसारके जीवनके लिए परमावश्यक माना है और अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र इनका महत्त्व वत्सरूपसे बताया है वैसे ही गौ और बैलका महत्त्व बताया गया है।

महिष, अजादिके दूधकी अपेक्षा गौके दुग्धका सेवन ही श्रेष्ठ माना है, जैसे—

सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ ॥
अथ. २।२६।४

अर्थ— (गवां क्षीरं सं सिंचामि) मैं गौओंका दूध अपने पात्रोंमें सींचता हूँ। (आज्येन बलं रसं सम्) और बल-वर्धक दुग्धरसको घृतके साथ मिलाता हूँ। (अस्माकं वीराः संसिक्ताः) उस दूध और घीसे हमारे वीर बालक सींचे गए हैं। (मयि गोपतौ गावः ध्रुवाः) अतः मुझ ग्वालेमें गौएं स्थिर रहें जिससे मैं अपने वीरोंका और दूसरे नौजवानोंका पालन पोषण अच्छी तरह कर सकूँ। तथा च—

आ हरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं रसम्।
आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥
अथ. २।२६।५

अर्थ— मैं गौओंका दूध प्राप्त करता हूँ। इन्हीं गौ द्वारा धान्य और सरसोंसे निकाले हुए तैलादि रसादिक पदार्थोंको भी प्राप्त करता हूँ। इसलिए हमारे वीरपुत्र और सुयोग्य पत्नियां इस घरमें लाई गई हैं। अतः हम सब इस गौ द्वारा पौष्टिक रस सेवन करते हैं। ऐसे ही अथर्ववेद कां. ३ सू. १४ यह समग्र सूक्त गोशालाके निर्माण और स्थितिको बताता है तथा च—

इह पुष्टिरिह रसः इह सहस्रसातमा भव।
पशून्यमिनि पोषय ॥ अथ. ३।२८।४

अर्थ— (यमिनि) हे जोडे उत्पन्न करनेवाली गौ! (इह पुष्टिः) इस तुझमें पुष्टि (इह रसः) और रस (घृत दुग्धादि) हैं। (इह सहस्र सातमा भव) तू इस संसारमें हजारों लाभ देनेवाली हो। इन मन्त्रोंमें दुग्ध, दधि घृतादि पदार्थोंकी प्रार्थना है और गौको सब पशुओंमें उत्तम माना है। तथा वेदमें मातृभूमिसे भी दुग्धकी प्रार्थना की गई है। क्योंकि दुग्ध ही शरीर और मस्तिष्कको पुष्ट करता है। यथा–

सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः।
अथ. १२।१।१०

अर्थ— वह सबकी जननी भूमि (माता पुत्राय पयः) माता जिस प्रकार पुत्रको दूध पिलाती है, ऐसे तू भी मुझ पुत्रको गायका दूध प्रदान कर। और भी देखिये जैसे गौ मित्र-शत्रु, छोटा–बडा, धनी-निर्धनी, हिंसक-पालकको न देखती हुई सबको समानभावसे दूध देती है, वैसे पृथिवी भी गौकी तरह मित्र शत्रुको नहीं देखती सबको एक जैसा अन्न देती है। पहिले अथर्व. ४।३९।२ में कहा है पृथिवी धेनुः— तथा च और भी मन्त्र देखिये—

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्। सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरंती:। अथ. १२।१।४५

इससे स्पष्ट है कि गौ अंग्रेजी, फारसी, अर्बी, हिन्दी, संस्कृत भाषियोंमें तथा वीर, शान्त, शृंगारी आदि भिन्न भिन्न धर्मियोंका भेद न रखती हुई सबको समानरूपसे दूध देती है और उन्हें पुष्ट करती है अतः गौ सबकी माता है और सेव्य है, और भी देखिये—

या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गो-ष्वप्यन्ने दधातु। अथ. १२।१।४

अर्थ— जो भूमि सब चलनेवाले प्राणियोंको उत्तम प्रकारसे धारण करती है। वह मातृभूमि हमें गौवोंमें तथा बैलसे उत्पन्न किये हुए बहुतसे अन्नोंमें रखे। यहां भी गौके लिये प्रार्थना की गई है। और मन्त्र देखिये—

उर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं
त्वाभि नि षीदेम भूमे। अथ. १२।१।२९

अर्थ— हे पृथिवि! तू बलवर्धक और पुष्टिकारक अन्न और घृतादिको धारण करती है। हम तेरे आश्रयमें रहकर घृतादिक रसिक पदार्थोंका सेवन करते हुए आनंदित रहें! यही घृतादि पदार्थोंकी प्रार्थना है। आजकल गोहत्या होनेसे घृत मिलनेमें भी नहीं आता। तथा च—

त्वमस्यावपनी जनानां अदितिः कामदुघा पप्रथाना।
अथ. १२।१।६१

अर्थ— हे मातृभूमि! तू लोगोंको अन्न देनेवाली ऐसी है जैसे कामनाके पूर्ण करनेवाली प्रशंसाके योग्य (अदितिः) न मारने योग्य गौ है। गोमाता तथा पृथिवी माताको एक जैसा माना है। और भी देखिये—

दोग्ध्री धेनुः वोढा अनड्वान्। यजु. २२।२२

अर्थ— इस राष्ट्रमें दूध देनेवाली गौ हो और हल उठाने वाला बैल हो। यहां भी परमात्मासे गौ और बैलकी प्रार्थना की गई है। यथापि च—

महत् पयो विश्वरूपमस्याः। अथ. ९।१।२

अर्थ— इस गौका दूध विश्वरूप है। तथा च—

स तौ प्र वेद स उ तौ चिकेत यावस्याः स्तनौ
सहस्रधारावक्षितौ उर्जं दुहाते अनपस्फुरन्तौ ॥
अथ. ९।१।७

अर्थ— (यौ अस्याः स्तनौ सहस्रधारौ अक्षितौ) जो इस गौके दो स्तन हैं वह हजारों धाराओंसे सदा रस (दूध) देते हैं उनके महत्वको कौन जान सकता है और कौन उनके महत्वका विचार कर सकता है अर्थात् वह दोनों स्तन अगाध समुद्रकी तरह रस देते ही रहते हैं।

इस प्रकार वेदोंमें गौका माहात्म्य बहुत बडे पैमाने पर वर्णित है।

श्री अरविन्दका पूर्णयोग

तथा

अन्यान्य योगपद्धतियां

[लेखक— श्री अलेश्वरजी, श्री अरविन्दाश्रम, पांडीचेरी– २ (द. भारत)]

★

मनुष्यके अन्दर जब भगवान्‌का स्पर्श होता है उसे ही योग कहते हैं। 'भगवान्' शब्दसे जो भी अर्थ किया जाय, पर भक्तके साथ भगवान्‌के, अहंके साथ ईश्वरके, जीवके साथ शिवके, आत्माके साथ परमात्माके, संस्कारके साथ शून्यके संयोगको हम योग कहते हैं। इसी संबंध-स्थापन से योग-साधना प्रारंभ होती है। पर प्रश्न है कि मनुष्य अपने किस भागमें भगवान्‌का स्पर्श पाना चाहता है।

मनुष्य विविध तत्त्वों और धाराओंकी समष्टि है। प्रधानतः तीन स्तर एकके ऊपर एक विन्यस्त हैं— देह और प्राण-शक्ति पर आधारित पशुभाव, मन-बुद्धिके क्षेत्रमें मनुष्यभाव और बुद्धि ज्ञान तथा आनंदसे देवभाव या आत्मस्वभाव प्रकाशता है। योगशक्तिके द्वारा इन्हीं भावोंसे होते हुए आरोहण होता है। जिस भावमें प्रतिष्ठित होना चाहते हैं उसके अनुसार योगसाधना करते हैं। उदाहरणार्थ हठयोग शरीर और प्राणशक्तिको केन्द्र बनाकर उसके अन्दर ही भगवान्‌का स्पर्श पाना चाहता है। राजयोग सूक्ष्मशरीरको केन्द्रीभूत कर मानस-ध्यान और चित्तके द्वारा भगवान्‌का स्पर्श पाना चाहता है। मार्गत्रय— १ ज्ञानयोग, २ भक्ति-योग और ३ कर्मयोग— आध्यात्मिक भूमिपर आधारित होकर आत्मा, जीव या पुरुषको केन्द्र बनाकर ज्ञान, प्रेम और शक्तिके द्वारा आत्माके साथ परमात्माका, जीवके साथ भगवान्‌का और पुरुषके साथ पुरुषोत्तमका साक्षात् संबंध स्थापित करना चाहता है।

यदि हम मायावादियोंकी तरह जगत्‌को केवल मरीचिका, दुःस्वप्न मात्र मानें तो किसी भी प्रणालीसे जीवन और जगत्‌से सर्वथा संपर्कशून्य होकर कैवल्य या सालोक्य मुक्ति पा सकते हैं। जब ऊपर उठ जाना ही एकमात्र लक्ष्य है तो किसी भी मार्गसे पार चले जा सकते हैं। इसके लिये अपनी प्रकृतिके अनुसार सरल साधन चुन लेना कोई कठिन नहीं। किंतु हम तो जीवन और जगत्‌को, आनंदमय, ब्रह्मरूप मानते हैं। अतः जीवन और जगत्‌का आलिंगन कर यहीं हम मुक्त और सिद्ध होना चाहते हैं। शरीर-रूप मंदिरके ऊपर ही भगवान् प्रतिष्ठित नहीं हैं, वरन् मंदिरकी सभी कोठरियां उनके प्रतिष्ठान हैं, निवासधाम हैं। अतः शरीर, मन, व्यक्तित्व आदि सबको एक साथ शुद्ध, मुक्त और पूर्ण करना होगा। शरीर, मन और आत्मा इन तीनों ही स्तरोंमें हमें प्रतिष्ठित करना और भगवान्‌को जानना और आलिंगन करना होगा। अतएव हम चाहेंगे अखंड पूर्णयोग जिसके द्वारा हमारी सभी जीवनधाराओंमें भगवान् लबालब भर जायं और केवल व्यक्तिगत सिद्धि ही नहीं वरन् विश्वमानव-की सिद्धि चरितार्थ हो। और इसी कारण हमें सब साधन मार्गोंका समन्वय करना होगा, जो समग्र मानवजातिको समष्टिगत साधनामें काम आ सके।

हम देखेंगे कि हठयोग अपने दो प्रधान उपायों— आसन और प्राणायाम—से शरीरको स्वस्थ और सुन्दर अवस्थामें अनि-श्चित कालतक रखने और प्रकृतिकी अनंत जीवनी शक्तिको धारण करनेका सामर्थ्य प्रदान करता है। नाना प्रकारकी जटिल प्रक्रियाओंसे नाड़ी शुद्धि करके शरीरको मुक्त और पूर्णतर करता है तथा प्राणायामकी क्रियाओंसे कुंडलिनी शक्ति जागृत कर अद्‌भुत शक्तियां और ऋद्धियां प्राप्त करता है।

पर शरीरके अक्षय होने और अद्भुत ऐश्वर्य प्राप्त करनेसे ही तो हम संतुष्ट नहीं हो सकते– 'येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्' जिस चीजसे मैं अमर न हो जाऊं उससे मेरा क्या काम ? हठयोग इन ऐश्वर्योंमें फंस जाता है और भगवान् को भुला देता है। शक्तिके स्वामीको भूलकर कृपणकी तरह शक्तिको अपने अन्दर छिपा लेता है पर हम तो भगवान् और ऐश्वर्य दोनोंको चाहते हैं। और वह भी अखिल जगत्के लिये। संसारसे संबंध विच्छिन्न कर इन महाजटिल प्रक्रियाओंसे जो शक्तियां प्राप्त की जाती हैं वे हम आसानीसे प्राप्त कर सकते हैं। जगत्के साथ सब प्रकारके जागृत संबंध बनाये हुए हम इन सब लाभोंके साथ–साथ और भी महत्तर वस्तुओंको पा सकते हैं।

राजयोग मनके सब व्यापारोंको शांत कर 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' की प्राप्ति कराता है और अन्तमें 'तदेवार्थमात्रनिर्भासस्वरूपशून्यमिव समाधिः' प्रदान करता है। इसके लिये अष्टांगयोगकी साधना करते हैं— यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। यमके द्वारा चित्तका उच्छृंखलवेग कुछ हद तक शमित होता है। नियम (अहिंसा, सत्यभाषण, मिताचार, शौच, संतोष, ईश्वर चिंतन आदि आदि) के द्वारा चित्तावक्षोभके दासत्वसे बहुत कुछ मुक्त हो जाते हैं। तदन्तर आसन और प्राणायाम (यहां हठयोगकी अपेक्षा अधिकतर सरल एवं आवश्यक विधियोंसे ही काम लेते हैं) से स्थिरता, कुंडलिनी जागृति और चित्त स्वच्छता प्राप्त हो जाती है। इस तरह निर्मल, शांत, विचारशून्य चित्तको इंद्रियों और विषयोंसे हटाकर प्रत्याहारके साधनसे आंतरिक स्थितिमें तन्मय होनेका अभ्यास करते हैं और धारणा तथा ध्यानके साधनसे आत्यंतिक निवृत्ति प्राप्त करते हैं जहां ध्याता, ध्येय और ध्यान तीनोंके स्थानपर एक महान् विराट् स्वप्रतिष्ठित चैतन्य ही रह जाता है। जब चित्तके सारे संस्कार शांत ही नहीं वरन् निर्मूल और लुप्त हो जाते हैं तभी 'दोषबीजक्षये कैवल्यम्' की प्राप्ति होती है और यही है समाधि।

राजयोगसे जीव अपने आध्यात्मिक स्वरूपमें स्थित होता है जिसका नाम स्वराज्यसिद्धि है और बहिर्जगत्को भी वशमें करता है जिसे साम्राज्य सिद्धि कहते हैं। पर यह साम्राज्य सिद्धि आजकल राजयोगसे निर्वासित कर दिया गया है यद्यपि दोनोंसे ही वास्तविक पूर्णता आती है। समाधि–अवस्थाको अत्यधिक महत्व देनेमें हमें जीवन और जगत्से बंधन तोडना होगा। हम तो अध्यात्म चेतनाको स्थूलमें जागरित करना, तुरीय अवस्थाको जाग्रत अवस्थातक लाना, आत्माकी शक्तिसे जीवन और जगत्को निर्मित करना चाहते हैं। अर्थात् जाग्रत समाधि प्राप्त कर हम चारों अवस्थाओं– तुरीय, सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रतको एक साथ भागवत रूपसे उपलब्ध करना चाहते हैं।

योगत्रय मनुष्यकी स्वाभाविक वृत्ति और मूल वस्तु अंतःकरणको लेता है। मनुष्य जानना, प्रेम करना और कर्म करना चाहता है अतः इन्हीं तीनोंकी सहायतासे सूक्ष्म, बृहत् और पूर्णकी ओर जा सकते हैं। राजयोग और हठयोग से समर्थित शरीर और मनके कठिन व्यायामोंकी आवश्यकता नहीं। ज्ञानयोग जाननेके द्वारा अज्ञानका नाश करता और सत्यं ज्ञानमनंत ब्रह्मको प्राप्त करता है। विचारसे देखता है कि शरीर, प्राण और मन असत्, चंचल, नश्वर हैं अर्थात् त्याज्य हैं। विवेकसे सद्वस्तुका आभास मिलता है और ध्यान तथा निदिध्यासन द्वारा उसी एकमेवाद्वितीयमें निमज्जित हो जाते हैं। जीव शुद्ध–बुद्ध–मुक्त होकर जगत् तथा इन्द्रियोंके ज्ञानसे दूरातिदूर हटकर कैवल्य ब्रह्मसिद्धिको प्राप्त हो जाता है। ज्ञानयोगसे गंभीरतम आत्मवस्तु, अनिर्वचनीय अपरिणामी और शाश्वत पूर्णत्व एकत्व प्राप्त होता है। पर हम सत्यं शिवं सुन्दरम् की शाखा–प्रशाखा और फल–फूलसे सुशोभित यह स्थूल दृश्य जगत् भूल जाते हैं। 'एक' को पाते हैं पर 'बहुत' को खो देते हैं। एकीकरणको समझते हैं पर समीकरणको नहीं जानते। परंतु हम तो चाहते हैं 'एक' को 'बहु' में और ब्रह्मको देह–प्राण–मन में प्रकाशित करना। ब्रह्म और जगत्के बीचका दुर्भेद्य प्राचीर तोड डालना और दोनोंके मिलनस्थान, सामंजस्य–तत्वको ढूंढ लेना। केवल चैतन्य ही नहीं तपः भी, निष्क्रिय अक्षर ही नहीं, सक्रिय–निष्क्रियसे ऊपरके पुरुषोत्तमको भी प्राप्त करना और जगत्को ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मस्थितिका सुन्दर लीला-विलास बनाना हम चाहते हैं।

भक्तियोग मनुष्यके परम सबल और स्वाभाविक प्रेम–तत्वको ग्रहण करता है और आत्मसमर्पणके द्वारा अर्थात् नाना मानवीय संबंधों (पिता–पुत्र, मित्र–मित्र, पति–पत्नी आदि) के आश्रयसे अपने पूर्ण प्रेम, अखंड भोगमूर्ति, परमसुन्दर, रसराज, ऐश्वर्यनिधि, लीलाधारी सच्चिदानन्द-

की परानुरक्ति तदनंतर सामीप्य प्रदान करता है। वह जगत्को लीलाभूमि मानता है पर उदासीन रूपसे। भक्तियोगने भगवान्‌के साथ निकट संबंध स्थूल रूपमें अनुभव किया है और उसे जीवन तथा जगत्‌के अन्दर प्रतिष्ठित किया है। पर यह भूल जाता है कि हम केवल निष्क्रिय भोक्ता ही नहीं वरन् सक्रिय कर्ता भी हैं इस जगत्‌के। इस आनन्दके खेलके विशेष लक्ष्यको प्रज्ञा द्वारा प्राप्त करना तथा कर्म द्वारा विराट् करना भूल जाते हैं। भावप्रवणताकी सहज मादकताके नशेमें चूर होकर हम धीरे धीरे साधारण जगत्से दूर हट जाते हैं। पर हमें तो इसे भगवान्‌के अन्दर शुद्ध और परिपूर्ण करना है तथा दिव्यजीवन प्राप्त करना है। भक्तिके आधारपर ज्ञान और प्रवाह कर्मको एकसाथ ग्रहण करना होगा। जीवन और जगत्‌में भगवान्‌के साथ जीवके मानवीय तथा दिव्य असंख्य संबंधोंको साक्षात् अभिव्यक्त करना होगा और एकता तथा पृथक्ताको समाविष्ट करना होगा।

कर्मयोगका साधारणतः लक्ष्य रहता है कर्मसे मुक्ति। कर्मको भगवान्‌के चरणोंपर पुष्पांजलिके रूपमें निवेदित करना और भगवान्‌की शक्ति तथा प्रेरणासे ही कर्मको संचालित करना आदि इसकी विशेषताएं हैं। आत्मसमर्पण और निष्काम-भावकी प्रबलतामें तो कर्तव्यज्ञान और कर्माधिकार भी लुप्त हो जाता है और हम भगवद्यंत्र बन जाते हैं। परंतु यह भी स्मरण रखना होगा कि कर्म भगवान्‌के ही स्वरूपसे उत्पन्न हुआ है। चित् शक्तिकी द्युति ही कर्मके अंदर विकसित हुई है, भगवत् आनंद ही कर्मके अंदर मूर्तिमान् हुआ है। ब्राह्मीस्थितिको अक्षुण्ण रखकर ही हम कार्य-जीवनके विराट् खेलकी सृष्टि कर सकते हैं। हम भगवान्‌को सर्वतोभावेन चाहते हैं, न केवल स्वरूपकी नग्नतामें वरन् रूपके ऐश्वर्यमें भी चाहते हैं। पूर्णभावके लिये ज्ञान, प्रेम और कर्मको एक साथ ले चलना पडेगा।

उपर्युक्त योगोंका लक्ष्य है सत्य, पुरुष, भगवान् और उपाय हैं ज्ञान, और वैराग्य। ये वेदांतपर आधारित होते हैं। इनके अतिरिक्त तांत्रिक योग मानता है शक्ति, प्रकृति और इसका उपाय होता है शक्ति और भोग। तांत्रिक प्रकृतिको चिन्मयी मानता है और प्रकृति पर ही पूर्णतया निर्भर रहता है। वह जीवनकी पूर्णता जीवनमें ही, आधारकी शुद्धिका साधन आधारमें ही मानता है। अतएव वह जीवनकी कर्मप्रचुर और भोगबहुल विक्षुब्धतासे, आधारकी सारी प्राकृत प्रेरणाओंसे ही गुजरता हुआ अपने जीवनको गढता है। जगत्-शक्तिके समस्त खेलको सत्य और आनंदमय मानकर उसका आलिंगन करता है, प्रकृतिको ही उच्चतर मानता है तथा शक्तिको ही आध्यात्मिक जीवनकी सम्राज्ञीके रूपमें वरण करता है। पर हमें तो सत् और शक्ति, पुरुष और प्रकृति, त्याग और भोगमें कोई विरोध नहीं लाना है। पुरुष-सत्ताकी ही अपनी चित्-शक्ति होती है। 'अस्ति' की चेतनाके आनंदको स्थिति या विश्राम कहते हैं, तो 'संभूति' के आनंदको गति और कर्म कहते हैं। 'एक' ही तपः शक्तिसे 'बहु' में अपना विस्तार करता है और फिर भी अक्षुण्ण, अपरिणाम भावसे 'एक' ही बना रहता है। हमें तो चाहिये सत्यका पूर्णतम रूप (अर्द्धांश नहीं) उसकी परिपूर्णतम अभिव्यक्तिके साथ।

हमने विभिन्न योगमार्गोंकी विशेषताएं तथा कमियां देख लीं। पर हमें तो अपने भीतरी और बाहरी सभी स्तरोंकी, अपनी सारी सत्ताकी, सभी शक्तियोंकी पूर्णताके साथ अभिव्यक्ति चाहिए। यद्यपि प्रत्येक योग हमें कुछ सहायता दे सकता है पर इनमें परस्पर इतनी विभिन्नताएं और जटिलताएं हैं कि इन सबका एक साथ अभ्यास करना मानो एक बृहद् विपत्तिकी ही सृष्टि करना है। और बारी बारीसे अभ्यासके लिये अनेक जन्मोंसे भी काम नहीं चलेगा। अतएव हमें कोई ऐसा तत्व खोजना होगा जिससे सारे मार्गोंका सामंजस्य हो सके, एक ऐसा सूत्र पकडना होगा जिसमें सब मार्गोंके गूढतम रहस्य गुथे हुए हों। समस्त शक्तिको पुंज, चित् और तपःका स्रोत, आत्मसत्ता और आत्म-अभिव्यक्तिका एकीभूत रूप, हमारे शरीर-प्राण मनके पीछे अवस्थित विज्ञान अतिमानस, (सुपरमाइन्ड) ही होगा हमारे पूर्णयोगका साधनकेन्द्र और लक्ष्य होगा सच्चिदानंद, जो अक्षर और क्षर एक और बहुसे ऊपर रहकर दोनोंका समान रूपसे आलिंगन करता है।

पूर्णयोगकी पहली बात है यह समझना कि पुरुषका आत्म-विश्वास ही है प्रकृति। पर कार्यतः प्रकृतिकी दो गतियां हैं—एक साधारण, अपरा और दूसरी दिव्य, परा। अहंकार, अज्ञान, अशक्ति, दुःखके वशीभूत जीवन अपराप्रकृतिका खेल है और ज्ञान, शक्ति और आनंदके अंदर प्रतिष्ठित जीवन पराप्रकृतिकी प्रतिमूर्ति है। चूंकि हमारी स्थिति नीचे के स्तरमें ही है, अतः उसीका आश्रय ग्रहण करके हमें

ऊपरके स्तरको पाना होगा, प्राकृतके अंदर प्रतिष्ठित रहकर उसीके अंदर अतिप्राकृत दिव्य खेलको प्रस्फुटित करना होगा। पूर्णयोगी जीवके किसी खंडित या विशेष प्रकरणके अंदर अपनेको बाध्य नहीं रखते। जीवनके सभी वैचिश्र्यों, जटिलताओं और कार्यकलापोंको योगके अंदर अंतर्भुक्त करते हैं। अंतर इतना ही होगा कि हम अपरा प्रकृतिके आधार न होकर दिव्य पराप्रकृतिके आधार होंगे। और इसका उपाय है अपनी समस्त सत्ताको ज्ञानपूर्वक भागवत सत्ताके साथ संयुक्त करना और भगवान्को नीचे बुलाकर इसी पार्थिवस्तरमें प्रतिष्ठित करना। एक तरहसे स्वयं भगवान् ही होंगे हमारी साधनाके साधक, हमारे योगके नियंता। फलस्वरूप खंडित तमसावृत प्राकृत जीवनमें ही अवतीर्ण होगा दिव्य सर्वज्ञ-सर्वव्रत चैतन्य। इस तरह साधनाकी दृष्टिसे पूर्ण विज्ञानशक्तिको प्रकट करनेका अर्थ है अहंकार-विसर्जन। इस पथमें विपुल श्रद्धा, अकुंठित साहस और अटूट धैर्यकी आवश्यकता है। कारण इसके तीन सोपान पार करने पडते हैं तब हमारी साधना कंटकहीन और द्रुतगामी होती है। पहला है दिव्य भागवत सत्ताके संस्पर्शमें अहंके आनेकी चेष्टा, दूसरा है निम्नप्रकृतिको दिव्य प्रेरणासे पुनर्गठित और परिवर्तित करना तथा तीसरा पूर्ण परिवर्तन साधना। पर साधक तो हैं स्वयं भगवान् और भगवती शक्ति। इन्हींकी कृपा और सहायतासे अंधा और पंगु भी सर्वसमर्थ हो सकता है। साथ ही लक्ष्यकी दृष्टिसे बाधाएं और विपत्तियां नगण्य भी हैं और इस दृष्टिसे यह पथ सहज और सुनिश्चित भी मालूम पडता है।

पूर्णयोगकी कार्यप्रणाली सहज-स्वाभाविक होती है। पूर्णयोगका साधक अपनी समस्त प्रवृत्तिको विकसित, प्रस्फुटित करनेका यथेष्ट अवसर प्रदान करता हुआ एक उदार विस्तारके साथ अंतः स्थित निगूढ प्रयोजनके अनुसार घूमता-फिरता हुआ मुक्त और यथेच्छ गतिसे आगे बढता है। प्रत्येक साधक अपने स्वभावकी आवश्यकताके अनुसार अपनी-अपनी साधन-पद्धतिका निर्माण करता हुआ उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होता है। जड यंत्रकी अलंघ्य गतानुगतिकता, बाध्य-बाधकताकी तरह नहीं वरन् उदार, सूक्ष्म, स्वतंत्र, विराट्, पूर्ण और अखंड भावसे साधना-शैली कार्य करती है। प्रकृतिके सबके सब उपकरण परिवर्तनसे गुजरकर भागवत सत्तासे भर जाते हैं और इसीकी ज्वलंतमूर्ति बन जाते हैं। इस क्रममें कुछ भी क्षुद्र, हेय, तुच्छ नहीं होता है, क्योंकि प्रत्येकके अंदर निहित है एक सत्य, एक अर्थ और एक सामंजस्य। मानव-प्रकृतिके सभी स्तरोंका, आधारके प्रत्येक अंगका एक सत्य आत्मा, एक सत्य कर्म है और उन सबको प्रस्फुटित करके, जाग्रत रूपमें प्रतिष्ठित करके पूर्णयोग भगवान्की पूर्णताको गठित करता है। और यह संभव इसलिए होता है कि साक्षात् अगस्त्यदृष्टि विज्ञानमयी भगवती मां ही साधनाका संचालन करती हैं ऐक्य और सत्ताके समर्पण और अभीप्साके अनुसार।

पूर्णयोगका फल भी पूर्ण, अखंड प्राप्त होता है। पूर्ण अखंड भगवान् अपने अद्वितीय एकत्वके रूपमें तथा अनंत रूप वैचित्र्यके रूपमें भी प्राप्त हैं। भगवान्के साथ न केवल सायुज्य, वरन् सालोक्य, सामीप्यके साथ-साथ परमपूर्ण साधर्म्य मुक्ति भी प्राप्त होती है। एकत्वमें भेदज्ञान और पृथक्त्वमें परिपूर्णतम अभेद्य एकत्व एक साथ उपलब्ध रहता है। ज्ञान, प्रेम और कर्मका पूर्ण सामंजस्य सिद्ध हो जाता है। एकत्वके आनंदके साथ-साथ बहुके वैचित्र्यका आनंद भी उपर्युक्त होता है। जीवन और जगत्के आलिंगन करनेपर हमारे शरीर-प्राण-मनसे भागवत प्रेरणाका ही स्रोत प्रवाहित होने लगता है और जगत्में हमारे द्वारा भागवत कर्म ही संपादित होने लगता है। इसके लिये सत्ता और यंत्रोंकी शुद्धि, मुक्ति, सिद्धि और आनंद क्रमशः आवश्यक रूपसे चरितार्थ होने चाहिये। तब उस समय मनुष्यकी प्रकृतिमें भगवान् आविर्भूत होते हैं, उसकी सत्ता, प्रेम, आनंद, ज्ञान और कर्ममें वही ईश्वर प्रकट होते हैं जो एक साथ ही एक और बहु, ज्ञान और शक्ति, असत् और तपः हैं। पूर्णयोगी इस जगत्में रहकर जगत्के सारे कर्मोंमें लिप्त रहकर अतिमानसकी आध्यात्मिक प्रतिमा, सच्चिदानंद भगवान्को मूर्तिमान् करता है। और इस वास्तविक पूर्णताके लिये सब मनुष्योंकी पूर्णता, सिद्धि अपेक्षित है। अतः हमारी व्यक्तिगत सिद्धिका लक्ष्य हो जाता है विश्वकल्याण, समग्र विश्वकी सिद्धि। फलस्वरूप पूर्णयोग आंतरिक स्वर्गराज्यके साथ ही बाहरका भी स्वर्गराज्य, पृथ्वीपर सत्ययुग उतार लाता है और यहां स्थायी बना देता है। एक नूतन अतिमानसिक जातिका प्रादुर्भाव होगा जो साक्षात् भागवतरूप ही होगी और वही 'एकोऽहं बहु स्याम्' की पूर्ण चरितार्थता होगी।

卐 ॥ 卐

मानव निर्माणकी वैदिक योजना

[लेखक— श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी]

★

लोकप्रियताके प्रयोजन

मानव मात्रके दिमागमें यह भावना रहती है कि वह अतिमानुषीय प्रभावोंसे घिरा है, जो उसका बुरा और भला दोनों ही करनेकी क्षमता रखते हैं। इसी क्रममें यह धारणा पुष्ट होती गई थी कि ये प्रभाव जीवनमें किसी भी समय हो सकते हैं और इनसे जीवनमें जीवन यापनकी दुविधा हो सकती है। अतः वे अमंगल जनक प्रभावोंके निवारण और हितकर प्रभावोंकी प्राप्तिके लिए सदा प्रयत्न रत रहा करते हैं। हिन्दू समाज भी इस आन्तरिक भयकी भावनासे मुक्त नहीं है। वरन् अन्य जातीयोंकी अपेक्षा इनके अन्तर्मनमें यह भावना इतनी गहराईसे जमी हुई है कि निकाले नहीं निकल पाती है।

इन अनिष्ट निवारणीय प्रयत्नोंके पीछे वे सदा यही चेष्टा करते रहते थे कि किसी प्रकार इनका निवारण हो, जिससे समाज बिना किसी बाह्य विघ्नके अपना सर्वांगीण विकास और अभिवृद्धि करता रह सके। इन गुप्त किन्तु दिव्य शक्तियोंसे वे सामयिक निर्देश और सहायता भी प्राप्त कर सकें। संस्कारप्रणालीके जन्ममें भी मूल रूपसे यही भावना विद्यमान थी, हालांकि कालान्तरमें उसका स्वरूप बहुत कुछ बदल गया है, और बदलता जा रहा है।

लोकप्रियताके इस प्रसंगको हमें ध्यानमें रखकर ही अब संस्कारोंके विविध लोकप्रिय प्रयोजनोंपर एक दृष्टि फेंकना है, और प्रयोजनोंके पीछे छिपे उन तत्वोंको खोजना है, जिनका मूलरूपसे कुछ अस्तित्व होता है, या उनके पीछे रहा है।

बुरे प्रभावोंकी रोकथाम

मानव जीवनमें अनेकानेक शुभ अशुभ प्रभाव आते जाते ही रहते हैं। इन्हीं अवांछित प्रभावोंके शमनार्थ हिन्दुओंने अनेक साधनोंका सम्बल लिया था, उनमें प्रथम स्थान साधनाका था। भूतों, पिशाचों, डाकिनियों, शाकिनियों आदिको बलि दी जाती थी, उनकी यथायोग्य पूजा अर्चना भी की जाती थी। प्रत्येक गृहस्थ अपने स्त्री बच्चों एवं अन्य पारिवारिक परिजनोंको स्वस्थ एवं सानंद देखनेका इच्छुक रहता है, तदर्थ तरह तरहकी प्रार्थनाएं वह करता रहता था। शिशु पर यदि रोगवाही भूत आक्रमण कर दिया करता था, तो शिशुका पिता वन्दना करता था—

'शिशुओंपर आक्रमण करनेवाले कुर्कुर, सुकुर्कुर, शिशुको मुक्त कर दो। हे सिसर, मैं तुम्हारे प्रति आदर प्रकट करता हूँ।' ×

प्रार्थनाके अतिरिक्त एक उपाय और भी था, जिससे सामान्यतया बहकावा कहा जाता था या सप्रयोजन उसे दूर ही रखा जाता रहा था। इस पक्षके उदाहरणके लिए देखिए कि मुण्डन संस्कारके अवसरपर काटे हुए केशोंको गायके गोबरके पिण्डके साथ मिलाकर गोष्ठमें गाड दिया जाता था, अथवा नदीमें प्रवाहित कर दिया जाता था। जिससे कोई भूत, प्रेत अथवा पिशाच उसपर चामत्कारिक प्रयोग नहीं कर सके। + यह धारणा जनसाधारणकी बन गई थी।

किन्तु जब इन दोनों कृत्योंके उपरान्त भी अनिष्टकारी तत्व अपना प्रभाव बतलाते ही रहे तो एक तीसरा क्रांतिकारी चरण उठाया गया, जिसके अन्तर्गत अशुभ तत्वोंको स्पष्टतः दूर चले जानेके लिए कहा जाता था, उनकी भर्त्सना की जाती, उनपर प्रत्यक्ष रूपसे दैविक शक्तियोंका सहारा लेकर आक्रमण किया जाता था। देखिए जातकर्म संस्कारके समय शिशुका पिता कहता है—

× पा. गृ. सू. १।१६।२० इसी सूत्रकी व्याख्या करते हुए गदाधर कहते हैं—

ततस्तुष्ट तुष्ट एनं एनं कुमारं मुञ्च।

+ 'अनुगुप्तमेतं सकेशं गोमयपिण्डं निधाय गोष्ठे पल्वलमुदकान्ते वा।' पा. गृ. सू. २।१।२०

'शुण्ड, मर्क, उपवीर, शौण्डिकेय, उलूखल, मलि म्लुच, द्रोणास और च्यवन तुम सभी यहांसे अदृश्य हो जाओ, स्वाहा!' ●

इसी प्रकार इन तत्वोंके शमनार्थ गृहस्थ देवी देवताओंसे भी अशुभ प्रभावोंके निराकरणार्थ प्रार्थना किया करता था। तब उसकी भावना इन अशुभ तत्वोंके शमनकी ओर अधिक रहती थी, और वह निष्ठापूर्वक रक्षाकी याचना प्रार्थनामें करता था। इन अवसरों पर वह घातक तत्वोंके निवारणार्थ अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, गंधर्व आदिका आव्हान भी किया करता था ॐ

इस प्रयोजनकी पूर्तिके लिए वह अन्य कई उपाय भी अक्सर काममें लाया करते थे। जैसे साधारणतः प्रत्येक संस्कारमें जलका उपयोग किया जाया करता था। क्योंकि यह भावना थी कि जल दैहिक अशौचको धोता, भूत-पिशाचों एवं राक्षसोंसे भी रक्षा करता है। यही कारण यज्ञोंमें रक्षा विधानमें एवं जल प्रसेचनमें जलका उपयोग होता है। शतपथ ब्राह्मणमें जलको राक्षसोंका नाशक तत्व बतलाया गया है। ×

सामान्यतया व्यक्ति कभी कभी स्वयं ही अपने बल, तेजस्विता, दृढता, आदिकी भी घोषणा कर दिया करता था, अथवा उसके प्रतीकोंकी घोषणाकी जाती रहनेकी परम्परा थी। ऐसे समयमें अपने मार्गमें आनेवाली किसी भी अमंगल भावनाका सामना करनेके लिए उसे अस्त्रशस्त्रोंसे सुसज्जित कर दिया जाता था। जैसे वर कटार, तलवार आदि धारण करता है। विद्यार्थी दण्ड धारण करते थे, ऐसा विधान है। ❀ यह भी स्पष्ट रूपसे कहा गया है कि यह दण्ड पशुओं और मानव शत्रुओंसे रक्षाके लिए नहीं, राक्षसों और पिशाचोंसे रक्षाके लिए भी उपयोगी है। ×

इसी क्रममें एक बात और भी विचारणीय है कि स्वार्थ-परायणताके वशीभूत होकर वह इन अमंगल शक्तियोंको अपने ऊपरसे हटाकर अन्य व्यक्तियों पर छोड देनेका क्रम भी किया करता था। उदाहरणार्थ, वधू द्वारा धारण किये गए वैवाहिक वस्त्र ब्राह्मणको दान कर दिये जाते थे, क्योंकि मनमें यह धारणा थी कि ये वधूके लिए घातक सिद्ध हो सकते हैं। वैवाहिक वस्त्रोंको गोशालामें रख या वृक्ष पर टांग भी दिया जाता था। ॐ

कुछ भी हो, उस समय आम जनताका यह विश्वास था कि ब्राह्मण अपनी साधना और तपश्चर्यासे इतना आत्मबल सम्पन्न रहता है कि उस पर ये सब अशुभ तत्व कभी भी आक्रमण कर ही नहीं सकते हैं। इसी कारण उसे माध्यम बनाया जाता रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कारोंको जनमान्यता अशुभ तत्वोंके प्रतिकारके उद्देश्यसे बहुत अधिक मिली है। क्योंकि हर प्राणी अपने आपको सुखी, शान्त और वैभव सम्पन्न समझता है और रहना भी चाहता है, कोई नहीं चाहता है कि उस पर अशुभ प्रभाव पडते रहें।

अभीष्ट तत्वोंकी प्राप्ति

सामान्य जीवन यापनमें हम देखते हैं कि हर प्राणी अपने अभीष्ट तत्वोंकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करता रहता है। यही एक उद्देश्य संस्कार पद्धतिके प्रारम्भ करनेमें भी निश्चित रूपसे रहा है जिस प्रकारसे अशुभ प्रभावोंसे दूर रहना जरूरी है, उसी प्रकारसे अभीष्ट तत्वोंकी प्राप्ति भी बहुत ही आवश्यक है, हिन्दुओंका स्वाभाविक विश्वास है कि जीवनका प्रत्येक समय किसी न किसी द्वारा अधिष्ठित है। अतः ऐसे प्रत्येक समय संस्कार्य प्राणीको आशीर्वाद देनेके निमित्त उस देवता विशेषका आह्वान किया जाता था, उसका षोडशो-

---

● पा० गृ० सू० १।१६।१९, आप० गृ० सू० १।१५ आदिमें।

ॐ 'अग्ने प्रायश्चिते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मण स्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्यै पतिघ्नी तनूस्तामस्यै नाशय स्वाहा।' पा० गृ० सू० १।११ २:१:५ इत्यादि।

× 'आपो हि वै रक्षोघ्नी!' शतपथ ब्राह्मण

❀ आ० गृ० सू० १।१९।१०, पा० गृ० सू० २।५।१६ आदि।

× 'विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्परिपाहि सर्वत इति'। पा० गृ० सू० २।६।२६

ॐ अथर्ववेद १४।२।४८-५० तथा कौशिक सूत्र ७६:१:७९:२४ आदि।

पचारसे पूजन किया जाता था और मंगल भावनाएं की जाती थीं।

परन्तु लोग स्वयं भी विविध उपायों एवं उपकरणोंसे अपनी सहायता आप भी करते थे। अनेकानेक शुभ एवं मंगल वस्तुओंके स्पर्शसे वे मंगलमय परिणामकी आशा रखते रहते थे। जैसे सीमन्तोन्नयन संसारके समय उदुम्बर वृक्षकी शाखाका पत्नीके गलेसे स्पर्श करवाया जाता है। × इसमें सामान्यतः यह आत्मविश्वास मनमें निहित है कि उसके स्पर्शसे स्त्रीमें सन्तति प्रजननकी क्षमता आजाया करती है। इसी प्रकारसे शिलारोहणसे दृढता आजाती है, ऐसा आत्मविश्वास था, अतः वधू और ब्रह्मचारीके लिए उसका विधान कर दिया गया है। ठीक इसी प्रकारसे हृदयस्पर्श ब्रह्मचारी, आचार्य तथा पति और पत्नीके मध्य ऐक्य और सामंजस्य स्थापित करनेका एक निश्चित उपाय समझा जाता था। इसी प्रकार जातकर्म संस्कारके अवसर पर पिता नवजात शिशुके लिए श्वास-प्रश्वास दृढ करनेकी भावनासे तीन बार फूंकता था क्योंकि श्वासको जीवनका प्रतीक समझनेका सहज विश्वास जनतामें व्याप्त है।

पुत्रकामनाकी इच्छुक माताओंको दही मिश्रित द्विदलीय धान्योंके साथ जौका एक बीज खाना आवश्यक माना गया था। इसका कारण भी स्पष्ट है कि इच्छुक मां जिन वस्तुओंको ग्रहण करती थी उनसे गर्भमें पौरुष वृद्धिकी आशा और भावना की जाती थी।

सन्तति प्रजननके पवित्र उद्देश्यकी पूर्तिके लिए पत्नीकी नाकके दाएं छिद्रमें दूर व्यापी अर्थात् सघन जडवाले वट-वृक्षका दूध या रस छोडा जाता था। गर्भ पोषणकी भावना इसमें पूर्ण रूपसे स्पष्ट होजाती है।

इसी प्रकार समञ्जनसे स्नेह और प्रेमपूर्ण वातावरण उत्पन्न होनेकी आम धारणा थी। विवाह संस्कारके अवसर पर जब वर समस्त देवों तथा जल आदिसे दम्पत्तिके हृदयोंमें ऐक्य और प्रेमका प्रादुर्भाव करनेकी प्रार्थना करता रहा करता था। वधूका पिता उन दोनोंका समञ्जन करता था जिसमें यह सहज धारणा थी कि कुरूप और अशुभ दृश्योंके निवारण तथा अपवित्र व्यक्तियोंके साथ सम्बन्ध तोड लेनेसे पवित्रता सुरक्षित बनी रहती है। इसी प्रकारसे विद्यार्जन कर रहे स्नातकके लिए अशुभ अक्षरोंसे प्रारम्भ होनेवाले शब्दोंका उच्चारण या दूषित विचारोंको मस्तिष्कमें लाना तक निषिद्ध था! वह गर्भिणीको विजन्या, नकुलको शकुल और कपालको भगाल कहता था। ' +

इसी प्रकार यदा कदा अभीष्ट वस्तुको प्राप्त करनेके लिए नाटकीय ढंगसे अथवा छद्म रूपसे भी कुछ बातें पूछी जाया करती थीं। उदाहरणार्थ, सीमन्तोन्नयन संस्कारके समय पत्नीको चावलके ढेरकी ओर देखनेके लिए कहा जाता था और पति उससे पूछता था कि 'सन्तान, पशु, सौभाग्य मेरे लिए दीर्घायु इनमेंसे तुम क्या देख रही हो। ※

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कार प्रणालीके उदय और विकासमें अपने अभीष्ट तत्वोंकी प्राप्तिके विभिन्न उपायोंपर ध्यान देनेकी भावनाका हाथ बहुत अधिक रहा है। हर प्राणी किसी भी कृत्यके समय अपनी भावनाएं और जन समुदायकी भावनाएं उसी अभीष्ट सिद्धिकी ओर केन्द्रित करवानेका पूरा पूरा प्रयत्न किया करता था। इसी सहज विश्वाससे संस्कारोंपर निष्ठा दृढ होती गई।

विविध प्रयोजन : आत्मोल्लासके माध्यम

संस्कारोंका यह प्रयोजन बडा ही महत्वपूर्ण है। प्रत्येक प्राणीके जीवनमें विभिन्नता हुए बिना उसका जीवन नीरस हो जाता है। अतः वह जीवनकी विभिन्न घटनाओंके कारण होनेवाले हर्ष, आनन्द और यहांतक कि दुःख व्यक्त करनेके लिए भी संस्कारोंका ही अनुष्ठान करता था। वह इसे आत्मोल्लास एवं शोक ज्ञापनका साधन भी मानता था।

क्योंकि इन संस्कारोंकी क्रिया करते समय उसमें उत्साह एवं उल्लास रहता था। ये उसीकी आत्माभिव्यक्तिके माध्यम थे। सन्तानोत्पत्ति लुभानेवाली थी, अतः उसके जन्मके समय पिता एवं अन्य समस्त परिजनोंको आनन्द होना स्वाभाविकसा ही था! इसी प्रकार नवजात शिशु जब

× 'औदुम्बरेण त्रिवृतमाबध्नाति अयमूर्जावतो वृक्षः उर्जीर्य फलिनी भव। पा० गृ० सू० १।१५।४।६

+ गर्भिणीं विजन्येति ब्रूयात्। शकुलमिति नकुलम्। भगालमिति कपालम्। पा. गृ. सु. २।७।११-१३

※ किं पश्यसि प्रजां पशून् सौभाग्यं मह्यं दीर्घायुष्टं पत्युः। सामवेद मंत्र ब्राह्मण १-५।१-५

प्रगतिशील जीवनका प्रत्येक चरण उठाता जाता था, तो उसे सन्तोष एवं हर्ष होता रहता था, जो संस्कारोंके माध्यमसे वह व्यक्त करता था।

विवाह मानव जीवनका सबसे बडा उत्सव ही समझा जाता रहा है। यज्ञोपवीत संस्कार द्वारा द्विजत्वकी प्राप्तिका विधान भी उल्लासमयताका द्योतक रहा है!

मृत्यु शोकका अवसर है, जो चारों ओर करुणा ही करुणाका दृश्य उपस्थित कर देता है और मानव इस सांसारिकतासे वैराग्य चाहने लगता है।

इसी प्रकार प्रत्येक संस्कारके पीछे सामान्य मानवजीवन यापनके तत्वोंका कुछ न कुछ रूपमें तत्व मिलता ही रहता था। मानव अपने मनमें आए हुए हर्ष और उल्लासके भावोंको साज-सजावट, भोज तथा उपहारों, यज्ञ, पूजा पाठ आदिके रूपमें व्यक्त किया करता है। इसी प्रकार उसके मनमें आई हुए शोक भावनाकी पूर्ण अभिव्यक्ति अन्त्येष्टि-कृत्यमें हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कारोंके कई विविध प्रयोजनोंके साथ ही साथ उनके पीछे आत्माभिव्यक्तिके माध्यमका प्रयोजन भी स्पष्ट रूपसे छिपा हुआ था! डा० राजबली पाण्डेयने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है— 'किन्तु गृहस्थ न तो बराबर केवल भयभीत ही रहता था और न वह देवताओंका व्यावसायिक प्रार्थी ही था। वह जीवनकी विभिन्न घटनाओंके कारण होनेवाले हर्ष आनन्द और यहां तक कि दुःख व्यक्त करनेके लिए भी संस्कारोंका अनुष्ठान करता था।' ●

संस्कारोंके इस प्रयोजनकी अत्यन्त आवश्यकता भी थी, क्योंकि यदि मानवका हर्ष उल्लास या दुःख व्यक्त नहीं हुआ तो वह अन्दर ही अन्दर घुटता रहता था और संभव है कोई न कोई नया उत्पात खडा हो सकता था। आदमी इस उद्देश्यसे हर्ष और उल्लासके प्रियक्षण सब परिजनोंको बांटकर उसे और बडा लेता है। इधर दुःखके कटु क्षण भी समस्त परिजनोंके साथ दुःख भारको कम कर देते हैं।

हमारे मेधावी महर्षियोंने इस दृष्टिकोणसे विधान बनाते समय पर्याप्त मर्यादाएं रक्खी थीं, जो जन जीवनार्थ अत्यन्त आवश्यक भी प्रतीत होती हैं।

भौतिक उद्देश्य

इन विविध षोडश संस्कारोंके करनेके पीछे कई भौतिक उद्देश्य भी सन्निहित हैं। जिनमें पशु-संतान, दीर्घ जीवन, सम्पत्ति, समृद्धि, शक्ति और बुद्धिकी प्राप्ति आदि उद्देश्य छिपे हुए थे।

चूंकि संस्कार गृह्यकृत्यके रूपमें विद्यमान हैं और स्वभावतः उनके साथ ही अनुष्ठानके समय घरेलू जीवनसे संबंधित सारी आवश्यक वस्तुओंकी भावना भी देवताओंसे की जाती थी। हिन्दू जगत् युगोंसे श्रद्धालु और विश्वासी जगत् रहा है। अतः उनका यह सहज विश्वास था कि आराधना और प्रार्थनाके माध्यमसे उनकी इच्छाओं, आवश्यकताओं, अभावों, आकांक्षाओंको देवता लोग जान लिया करते हैं और पशु, सन्तान, अन्न, स्वास्थ्य, सुन्दर शरीर और तीक्ष्ण बुद्धिके रूपमें उसकी पूर्ति कर दिया करते हैं। ॐ

सच तो यह है कि इन सारे भौतिक उद्देश्योंकी नींव इतनी दृढ और गहरी है कि काफी प्रयत्नोंके बावजूद भी वह नहीं निकल पा रही है। आज भी उन्होंने जन साधारणके मनपर उसी प्रकार अधिकार जमा रक्खा है।

इधर पुरोहित लोगोंने इस उद्देश्यके प्रचारमें सदा आगे रहकर काम किया है। उन्हें युगोंसे जन साधारण की इन भौतिक आकांक्षाओंको बढाते रहनेका क्रियाकलाप भी किया है। उनका यही क्रम आज भी [illegible] चला आ रहा है। वह सदासे इन भौतिक आकांक्षाओंको प्रबल बनाता रहकर, उन्हें परिष्कृत करने और गृहस्थ जीवनके लिए उनका औचित्य सिद्ध करनेका प्रयास करता आया है। जनता भी इस औचित्यको सही मानकर उसी पर चलती आ रही है, इस विषयमें अधिक न सोचकर इन भौतिक उद्देश्यको भी मानकर उद्देश्य प्रकरण समाप्त किया जाता है।

● ● ●

● डा. राजबली पाण्डेय, 'हिन्दूसंस्कार' पृष्ठ ३३

ॐ 'एकमिषे विष्णुस्त्वां नयतु द्वे ऊर्जे त्रीणि रायस्पोषाय चत्वारि मायोभवाय पञ्च पशुभ्यः षड् ऋतुभ्यः।'

शां. गृ. सू. १।१४।५

(सप्तपदीके अवसरपर इस ऋचाके उच्चारण करनेकी धारणा है, और किया जाता है।)

राष्ट्रके लिए वैदिक वृष्टि-विज्ञान

लेखक— श्री रणछोडदास 'उद्धव' संचालक अ. भा. रविधाम, केन्द्र महिदपुर [म, प्र.]

★

मानवके पास आत्मा, बुद्धि, मन और शरीर ये चार चीजें हैं और इन्हींके लिए क्रमशः मोक्ष, धर्म, काम और अर्थ इन चार पुरुषार्थोंकी आवश्यकता है। किन्तु आजके भौतिक जनजीवनको आत्मा और मोक्ष शब्द प्रिय नहीं लग रहे हैं। शेष काल, दिशा और देशवाले बुद्धि, मन तथा शरीरकी मान्यतामें आपत्ति नहीं है। मानवके इन तीनों प्राकृत पर्वोंका प्रकृतिके कालात्मक सूर्य, दिगात्मक चन्द्रमा एवं देशात्मक भूपिण्ड से क्रमिक सम्बन्ध हैं।

हम देख रहे हैं कि- सूर्यपिण्डको केन्द्र बनाकर चारों ओर एक प्रकाशमण्डल है, चन्द्रपिण्डको आधार बनाकर चांदनी है और जिस पर आप-हम सब बैठे हैं या चल फिर रहे हैं, इस भूपिण्डको केन्द्र बनाकर इसके चारों ओर भी एक पार्थिव-मण्डल है। जिसकी व्याप्तिकी सीमा वैज्ञानिक महर्षियोंने सूर्यपिण्डसे भी कुछ ऊपर तक मानी है। यों इन तीनों ही पिण्डोंके तीन स्वतन्त्र मण्डल और बन जाते हैं, जिन्हें 'महिमामण्डल' भी कहा जाता है। तीनों पिण्ड भूतप्रधान हैं और तीनों मण्डल प्राण-प्रधान हैं। इस प्रकार तीनके ६ वितर्क हो जाते हैं। इनमेंसे कालात्मक सूर्यपिण्डसे 'ज्ञानशक्ति' जिसका सांकेतिक नाम—

(१) 'ब्रह्मवर्चस' है, प्रकट होता है। कालात्मक सूर्यके संवत्सरमण्डलसे यशः प्राणात्मिका—

(२) कीर्तिकी अभिव्यक्ति होती है। दिशात्मक चन्द्र-पिण्डसे—

(३) पशुभाव एवं दिगात्मक चन्द्रके परिप्लवमण्डलसे—

(४) प्रजाभावकी निष्पत्ति होती है। देशात्मक भूपिण्डसे—

(५) अन्नभाव तथा देशात्मक पृथिवीके इलान्दमण्डलसे—

(६) अन्नादभाव (भोक्ताभाव) की उत्पत्ति होती है। इन छहोंसे युक्त सूर्य, चन्द और भूविवर्तोंसे ही मानवके प्राकृतस्वरूप बुद्धि, मन और शरीर नामके तीन पर्व बने हुए हैं। अतएव ब्रह्मवर्चस नामक ज्ञान और कीर्तिका सूर्य-की बुद्धिसे, पशुभाव और प्रजाभावका चन्द्रके मनसे तथा अन्न और अन्नाद (भोग्य और भोक्ता) का पृथिवीके शरीरसे ही क्रमिक सम्बन्ध हो रहा है।

बुद्धि, मन और शरीरके माध्यमसे ही बौद्धिक, मानसिक और शारीरिक भाव नियन्त्रित नहीं रह सकते। आत्म-नियन्त्रणसे अलग हो जानेवाले हमारे ये तीनों ही तन्त्र एक साथ सभी कुछ जानने-भोगने करने-करानेके लिए आतुर हो पडते हैं। केवल प्रकृतिपरायण मानवके लिए ज्ञान, कीर्ति, पशु, प्रजा, भोग्य और भोक्ता आदिका कालसापेक्ष विलम्ब सह्य होता ही नहीं। ऋषिकी दृष्टिने प्रकृतिके इस मर्मको समझा था और परीक्षण किया था। फिर इसके मूलमें दिग्-देश-कालसे अलग वह 'आत्मभाव' स्थित किया था, जिसमें क्रमसिद्धा-व्यवस्थाके नियन्त्रण एवं संचालनकी शक्ति रहती है। पुरुष (आत्मा) से ही प्रकृतिका नियन्त्रण सम्भव है। तभी तो सब कालमें उपयोगी वेदशास्त्रके सम्बन्धमें राजर्षि मनुके द्वारा- 'सर्वं वेदात्प्रसिद्धयति' यह घोषणा हुई है। तैत्तिरीय-उपनिषद्‌में कहा है—

"आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता। य एवं वेद, (सः) प्रतितिष्ठति (लोके प्रतिष्ठितो भवति), अन्नवान् (भवति), अन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया, पशुभिः, ब्रह्मवर्चसेन (ज्ञानेन)। महान् (भवति) कीर्त्या (यशसा)।" (भृगुवल्ली ६ अनुवाक)

'आनन्द ही ब्रह्म है इस प्रकार निश्चयपूर्वक जाना। वह यह भृगुकी जानी हुई और वरुण द्वारा उपदेश की हुई विद्या विशुद्ध आकाशस्वरूप परब्रह्म परमात्मामें स्थित है। जो कोई

भी इस प्रकार जानता है; वह लोकमें प्रतिष्ठित हो जाता है, अन्नवाला और अन्नको भलीभाँति पचानेकी शक्तिवाला हो जाता है, सन्तानसे, पशुओंसे, ज्ञानसे और कीर्तिसे भी महान् हो जाता है।'

आजके राष्ट्रवादी तो उपर्युक्त वर्णनसे तब तक संतुष्ट नहीं हो सकते, जब तक कि उनकी मान्यताके अनुरूप राष्ट्र, गाय, बैल, घोडे, जाग्रत नारी, सभाचतुर मानव, युद्धविजेता सैनिक, यातायातसाधन, खेतीके लिए उपयोगिनी वर्षा, पुष्प-फलसे लदे हुए हरे भरे पेड, सायं-प्रातःकी योग-क्षेम चिन्ता आदि भावोंके माध्यमसे संबंध रखनेवाली लौकिक उपयोगिताओंका ही वेदशास्त्रके द्वारा संकेत नहीं करा दिया जाता। महर्षियोंकी अलौकिक वाणीका यह चमत्कार है कि उन्होंने केवल एक ही मंत्रमें राष्ट्रके उपर्युक्त संपूर्ण प्रश्न हल कर डाले हैं। यजुर्वेदमें वह मंत्र आया है—

"आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धि-र्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यज-मानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥" (य. २२।२२)

मंत्रका अक्षरार्थ यही है कि- 'हे ब्रह्मन्! ब्राह्मण ब्रह्म-वर्चस्वी उत्पन्न हों। राष्ट्रमें क्षत्रियवर्ग वीर, धनुर्धारी, नीरोग और महारथी उत्पन्न हो। गाय दूध देनेवाली, बैल बोझ ढोनेवाला, घोडा तेज चलनेवाला, स्त्री रूप-गुणवती, रथी जयशील उत्पन्न हो। यजमानका युवा पुत्र सभाप्रिय एवं वीर उत्पन्न हो। समय-समय पर पर्जन्य वर्षा करता रहे। हमारे लिए ओषधिएँ फलवती बन कर पकतीं रहें, (इस प्रकार हे ब्रह्मन्! आप हमारे लिए) योग-क्षेमका निर्वाह करते रहें।'

उपर्युक्त मन्त्रसे प्रेरित होकर पं. वीरसेनजी वेदश्रमी (वेद-सदन, ७२ महारानी रोड, इन्दौर) लिखते हैं कि- 'यजुर्वेदके २२ वें अध्यायके २२ वें मंत्रमें 'निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु' यह पाठ आता है। उसका पाठ हम बडे उत्साहसे अनेक शुभवसरोंपर करते हैं। परन्तु क्या इस मन्त्रवाक्यसे हमें उस वैदिक विज्ञान या शक्तिकी खोज करनेकी प्रेरणा प्राप्त नहीं होती कि जिससे हम यह शक्ति प्राप्त कर लें कि जब हम चाहें तभी वृष्टि हो और जब चाहें तब वह वृष्टि रुक भी सके। अर्थात् अतिवृष्टि और अनावृष्टि पर हमारा पूर्ण अधिकार हो।' इस दिशामें वे खोज और परीक्षण भी कर रहे हैं। हम भी वैदिक वृष्टि-विज्ञानके विषयमें अपने स्वाध्यायका सार सप्रमाण लिखते हैं।

'वैदिक सम्पत्ति' के लेखक पं. रघुनंदन शर्माने भी वर्षाके लिए कुछ प्रयोग लिखे हैं। वे लिखते हैं कि 'जंगल वर्षाके भी कारण हैं। 'हार्म्सवर्थ हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड' में लिखा है कि वर्षामें न्यूनाधिकता उत्पन्न कर देना मनुष्यके हाथमें है। यदि वर्षा कम करना हो तो जंगलोंको काट दीजिये और यदि वर्षा अधिक बरसाना हो, तो जंगलोंको लगा दीजिये। जैसे जैसे जंगल कटते जाते हैं और खेती बढती जाती है, वैसे ही वैसे वर्षा कम हो रही है और संसारसे जलसम्बन्धी आर्द्रता नष्ट हो रही है।...पानीके सूखनेके तीन ही कारण अर्थात् वर्षाकी कमी, जंगलोंका नाश और खेतोंका विस्तार ही बतलाये जाते हैं। जंगलोंसे अधिक वृष्टि होनेका प्रमाण वेदमें भी मिलता है। ऋग्वेदमें लिखा है कि—

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं
स्तूपं ददते पूतदक्षः।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषा-
मस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥
(ऋ. १।२४।७)

अर्थात् अवर्षणके समयमें पवित्र करनेवाला वरुण (राजा) वनके ऊपर स्तूप- जलराशि देता है और नीचे गिरती हुई जलधाराएँ उस स्तूपके ऊपर ठहरती हैं। जिनको अन्तरिक्षमें ठहरी हुई किरणें लाती हैं। तात्पर्य यह कि सूर्यकी किरणें अन्तरिक्षमें जलका संचय करके अवर्षणके समयमें भी वर्षाको वनोंके ऊपर गिरनेकी प्रेरणा करती हैं। इसीलिये जंगलोंमें कभी अवर्षण नहीं होता। परन्तु जहाँ जंगल नहीं हैं केवल खेती ही होती है, वहाँ जिस प्रकार अनावृष्टिसे दुष्काल हो जाता है, उसी तरह अतिवृष्टिसे भी दुष्काल हो जाता है। परन्तु जंगलोंमें अनावृष्टि तो होती ही नहीं, प्रत्युत अतिवृष्टिसे भी दुष्काल नहीं होता। क्योंकि अतिवृष्टिसे घास और वन-वृक्ष खूब बढते हैं, जिनसे फल प्राप्त होते हैं और गौचारनसे दूध प्राप्त होता है।

यज्ञसे वृष्टि

यद्यपि यज्ञका अर्थ बहुत विशाल है, किन्तु यहाँ यज्ञका अर्थ इच्छानुसार पानी बरसाना है। आर्योंकी सभ्यतामें

इच्छानुसारमें पानी बरसाना एक विशेष आविष्कार है। आर्यसभ्यतामें इस आविष्कारकी महत्ता इसलिए है कि मनुष्यका निर्वाह पशुओंपर, पशुओंका वृक्षोंपर और वृक्षोंका वर्षापर अवलम्बित है। यदि पानी न बरसे, तो वृक्षोंका अभाव हो जाय और वृक्षोंके अभावसे पशुओंका और पशुओंके अभावके मनुष्योंका अभाव होजाय। कहनेका तात्पर्य यह है कि प्राणिमात्रका निर्वाह केवल वर्षापर ही अवलम्बित है। इसलिए आर्योंने इच्छानुसार पानी बरसानेकी विद्याका आविष्कार किया था। इस विद्याका आविष्कार आर्योंके मौलिक ज्ञानयज्ञके द्वारा हुआ था। यज्ञके द्वारा ही इच्छानुसार पानी बरसाया जाता था। शतपथ ब्राह्मण ५।३ में लिखा है कि—

अग्नेर्वै धूम्रो जायते धूम्रादभ्रमभ्राद् वृष्टिः।

अर्थात् अग्निसे धूम, धूमसे बादल और बादलोंसे वृष्टि होती है। इसी बातको मनुस्मृतिने इस प्रकार कहा है कि-

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥
(मनु० ३।७६)

अर्थात् अग्निमें डाली हुई आहुतियाँ सूर्यकी किरणोंमें पहुँचती हैं और सूर्यकी किरणोंसे वृष्टि होती है, तथा वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजा उत्पन्न होती है। यही बात भगवद् गीतामें कृष्ण भगवान् इस प्रकार कहते है कि—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥
भगवद्गीता ३।१४

अर्थात् अन्नसे सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न वर्षासे उत्पन्न होते हैं, वर्षा यज्ञोंसे होती है और यज्ञ कर्मोंसे उत्पन्न होते हैं। इन वर्णनोंसे कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि आर्योंने किसी खास प्रकारके यज्ञसे इच्छानुसार पानी बरसानेकी विद्या ढूँढ निकाली थी। वेदमें जो 'निकामे निकामे पर्जन्यो वर्षतु' लिखा है, उसका यही मतलब है कि जब-जब वर्षाकी कामना की जाती है, तब-तब यज्ञके द्वारा पानी बरसता है।

पानी बरसानेवाले यज्ञोंमें घीका बहुत बडा खर्च होता है। क्योंकि घीमें हवाके रोकने और दूसरे तरल पदार्थोंको अपने साथ जमा देनेका गुण है। इसलिए अग्निके द्वारा आकाशमें घी इतना अधिक फेंक दिया जाता है कि वह घृतबाष्प ऊपरकी ओर अपना एक सीधा मार्ग बना लेता है जिसमें वायु प्रवेश नहीं कर सकता। घीका वायुप्रतिरोधक गुण हम रोज अपने अनुभवसे देखते हैं। हम देखते हैं कि सर्दीके दिनोंमें वायुप्रवेशसे बचनेके लिए लोग घी, मक्खन, मलाई या मोमको चेहरे और हाथ-पावोंमें लगाते हैं, जिसके कारण वायुसे खाल नहीं फटती। दूसरा तजुरबा हम घीको एक कटोरीमें भरकर और आगमें चढाकर देख सकते हैं। एक ही साथ एक कटोरीमें पानी भरकर और दूसरीमें घी भरकर आगमें चढानेसे हमको दिखलाई पडेगा कि घी शान्तरूपसे धीरे धीरे जलकर कम हो रहा है, पर पानीवाली कटोरीकी पेंदीमें छोटे-छोटे बुदबुदे उत्पन्न होते हैं। बुदबुदे बढते हैं, फूटते जाते हैं और पानी कम होता जाता है। पानीमें बुदबुदेके उत्पन्न होनेका कारण पानीमें हवाका प्रवेश है और घीमें बुदबुदोंके न होनेका कारण हवाका प्रतिरोध है। पानीमें हवा प्रवेश हो जाती है, पर घीमें प्रवेश नहीं कर सकती।

इन दोनों अनुभवोंसे ज्ञात होता है कि घीमें हवाके प्रतिरोध करनेका गुण है। यही कारण है कि अग्निके द्वारा जब आकाशमें घी फेंका जाता है तो वह अपने अन्दर वायुको नहीं घुसने देता और दूर तक ऊपरकी ओर एक सीधा स्तूपाकार मार्ग बना देता है। फल यह होता है कि नीचेकी सघन वायु विरल होकर उड जाती है और उस घृतमार्गमें आकाशस्थित जलबाष्प भर जाता है और घीमें पानीको जमा देनेकी शक्ति होनेके कारण जलबाष्प सघन हो जाता है और पानी होकर बरस पडता है। घीमें पानीके जमानेकी शक्ति भी सबके अनुभवमें है। हम देखते हैं कि सर्दीके दिनोंमें घीके साथ छौंकका पानी भी जम जाता है। जिस तरह सर्दीसे घी जम जाता है, उसी तरह ऊपरके जल बाष्पकी ठंडकसे घृतबाष्प भी जम जाता है और अपनी जमावटके साथ-साथ जलबाष्पको भी सघन बना देता है और पानीके रूपमें बरसा देता है। अनुमान होता है कि प्राचीन आर्योंने घृतके इन गुणोंके साथ अन्य ऐसे ही पदार्थोंके गुणोंका संग्रह करके किसी विशेष प्रक्रियाके द्वारा जल बरसानेकी विद्या सिद्ध कर ली थी जिससे वे इच्छानुसार जल बरसा लेते थे और जलसे वनवृक्षों, वनवृक्षोंसे पशुओं और पशुओं तथा वनवृक्षोंसे समस्त मनुष्योंके अर्थकष्टको दूर कर देते थे।"

'श्रीसनातनधर्मालोक' के पञ्चम सुमनमें पं. दीनानाथ शर्मा शास्त्री सारस्वत विद्यावागीशजी लिखते हैं कि- यज्ञसे

वृष्टिका होना भी कहा जाता है। उस यज्ञकी सामग्रीमें ऐसे तत्त्वोंका संमिश्रण करके अग्निमें हुत करते थे, जो सूक्ष्मरूपमें शक्तिसम्पन्न होकर अन्तरिक्षमें जाकर हाइड्रोजन और आक्सीजन नामक दो गैसोंके मिलानेका काम करते थे- इससे जल बनकर पृथिवीपर बरसता था, मानसून वायुओंको यज्ञका पोषण प्राप्त हो जानेसे वृष्टि होना अस्वाभाविक नहीं- इस प्रकार कारीरी-इष्टिसे वर्षाका होना भी सोपपत्तिक ही सिद्ध हुआ। वेदमें भी इसलिए कहा है- 'स (अग्निः) नो वृष्टिं दिवस्परि।' (ऋ० २।६।५)- अग्नि हमारे लिये अन्तरिक्षसे जल-वर्षा करते हैं।

वैदिक यज्ञकर्म केवल पारलौकिक आधिदैविक स्वर्गादि फलोंके ही जनक नहीं हैं, किन्तु प्रत्यक्ष भौतिक योगक्षेम देनेवाले वर्षादि फल भी प्राप्त हो जाते हैं। वेदविद्यासमुद्धारक स्वर्गीय श्रीमधुसूदनजी ओझाने वृष्टिविद्या-बोधक निमित्त-शास्त्र 'कादम्बिनी' नामसे लिखा है। उस शास्त्रमें वर्षाके निमित्त-भौम, आन्तरिक्ष, दिव्य और मिश्र इन ४ भेदोंमें विभक्त हैं।

१- देश, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग प्रभृति भौतिक चीजोंके द्वारा वर्षाका ज्ञान होनेको भौतिकनिमित्त कहते हैं।

२- वायु, बादल, विद्युत्, गर्जन-तर्जन, सन्ध्या, दिग्दाह, प्रतिसूर्य, तारा, कुण्डल, आँधी, गंधर्वनगर, इन्द्रधनुष, वायुधारणा आदिसे वर्षाके ज्ञान होनेको आन्तरिक्ष-निमित्त कहते हैं।

३- सूर्य-चन्द्रग्रहण, पुच्छलतारे, सूर्यके चिन्ह, सप्तनाडीचक्र, ग्रहोंका उदयास्त संक्रान्ति आदिसे वृष्टिके ज्ञान प्राप्त करनेको दिव्यनिमित्त कहते हैं।

४- कार्तिकसे आश्विन तकके बारह महीनोंके प्रत्येक दिनोंके तथा विशेष रूपसे खास-खास अक्षयतृतीया, आषाढीपूर्णिमा, होलिका आदिके शकुनों तथा उपर्युक्त चिन्होंसे वर्षाके ज्ञान करनेको मिश्रनिमित्त कहते हैं।

इन निमित्तोंमें भौमनिमित्तकी अपेक्षा आन्तरिक्ष-निमित्त और आन्तरिक्षकी अपेक्षा दिव्यनिमित्त, इस तरह उत्तरोत्तर एक दूसरेसे अधिक बलवान् हैं। क्योंकि भौमनिमित्तका फल बहुधा थोडी ही दूरतक, आन्तरिक्षका फल एक जिलेतक, दिव्यनिमित्तका फल एक प्रान्ततक और मिश्रनिमित्तका फल सर्वत्र होता है।

इन चारों निमित्तोंके लिए- विशेष कर दिव्य और मिश्र-निमित्तोंकी परीक्षाके लिए सर्व प्रथम खगोलीय ग्रहनक्षत्र-स्थिति जानना परमावश्यक है। इसके ज्ञान बिना सहसा कोई निमित्त निश्चित कर देना दुष्कर है।...

प्राचीन समयमें इस विद्याके विद्वान् उपर्युक्त चार निमित्तोंके आधार पर सद्यः (शीघ्र) होनेवाली एवं विलम्बमें होनेवाली वर्षाका तथा इसीके आश्रयसे सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, महामारी आदिका भी बहुत समय पूर्व ही निश्चय कर लिया करते थे कि- अमुक-अमुक देशोंमें अमुक-अमुक समय पर, इतनी मात्रामें वर्षा होगी और इस प्रकार सुभिक्ष दुर्भिक्ष होगा। इतना ही नहीं, बल्कि वे तो अवर्षा, अल्पवर्षा, अधिक वर्षा आदि दैवकोपकी शान्तिके लिए ठीक-ठीक प्रबन्ध भी कर लिया करते थे। आगे श्री ओझाजी कहते हैं कि- आजकलके पाश्चात्य विद्वान्, जो कि हमारे चारों निमित्तोंके कई पदार्थोंमेंसे केवल आन्तरिक्षनिमित्तके एक वायुके ही ज्ञानको (संभवतः वह भी पूरा नहीं) केवल सद्यो वृष्टि-मात्र बतानेवाले एक भागको जाननेमें पर्याप्त धन खर्च कर बैठते हैं। इनकी तरह हमारे प्राचीन नैमित्तिक दैवज्ञोंको इतने अपव्यय करनेकी न आवश्यकता ही होती थी और न इतना परिश्रम ही उन्हें उठाना पडता था। वे विद्वान कार्तिक शुक्ला प्रतिपदासे कार्तिककृष्णा अमावास्यातकके बारह महीनोंकी एक डायरी रखते थे, जिसमें प्रतिदिनके प्रत्येक समयके चारों निमित्तोंको यथावत् लिखते रहते थे और फिर उसीके अनुसार फल बता दिया करते थे। परन्तु आजकल कुछ समयसे इन नैमित्तिक विद्वानोंको राजा-महाराजाओं आदिसे सहायता न मिलनेके कारण यह विद्या भारतवर्षसे लुप्तप्रायः हो गई है और प्रायः सब ही विद्वान् इस विद्याको छोड बैठे।

अतः आजकल वृष्टि, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष आदिका ज्ञान केवल पञ्चाङ्गके आधारपर ही रह गया। अब भी यदि हमारी वृष्टि विद्याके चारों निमित्तोंके आधार पर वृष्टि फलके देखनेका पुनः प्रयत्न किया जाय, एवं एतदर्थ स्कूल, कालेजों आदिमें ज्यौतिष आदि अन्य विषयोंके साथ-साथ इस विद्याके पढानेका भी पाठ्यक्रम नियत किया जाय तो मुझे आशा ही नहीं, बल्कि पूरा विश्वास है कि विद्वान् लोग इसमें पूरी सफलता प्राप्त करके इस देशमें इस विद्याको फिरसे चमका सकते हैं।' उक्त निमित्तोंका विचार कर वृष्टियज्ञ करना चाहिए।

मानसध्यानसे वृष्टि

यज्ञसे वृष्टि होनेके विषयमें शतपथ ब्राह्मणमें कहा है—

"स यदि वृष्टिकामः स्यात्, यदीष्ट्या वा यजेत दर्शपूर्णमासयोरेवं ब्रूयात् 'वृष्टिकामो वा अस्मि' इति। तत्र अध्वर्यु ब्रूयात्- 'पुरोवातं च विद्युतं च मनसा ध्याय' इति। 'अभ्राणि मनसा ध्याय' इति आग्नीध्रम्। 'स्तनयित्नुं च वर्षं च मनसा ध्याय' इति होतारम्। 'सर्वाण्येतानि मनसा ध्याय' इति ब्रह्माणम्। वर्षति हैव तत्र-यत्रैवं ऋत्विजः संविदाना यज्ञेन चरन्ति॥" (श. १।५।२।१९)

'वह यजमान यदि वृष्टिकी कामना रखता हो, वही यजमान अन्य फल देनेवाली सौरी आदि इष्टिसे यजन करनेवाला हो, तो उसे दर्शपूर्णमासेष्टिमें ही (ऋत्विजोंसे) यह कह देना चाहिए कि- मैं वृष्टिकी इच्छा रखता हूँ। इस वृष्टिकर्ममें उस यजमानको अध्वर्युसे तो यह कहना चाहिए कि- तुम अपने मानस-संकल्पसे पुरोवात (पूर्वकी हवा) और विद्युत्का ध्यान करो। आग्नीध्र नामक ऋत्विक्से यह कहना चाहिए कि- तुम मनसे बादलोंका ध्यान करो। होता नामक ऋत्विक्से यह कहना चाहिए कि- तुम स्तनयित्नु (गर्जन-तर्जन) और पानीका ध्यान करो। ब्रह्मा नामक (त्रैविद्य-तीनों वेदोंको जाननेवाले) ऋत्विक्से यह कहना चाहिए कि आप पुरोवातादि सबका मनसे ध्यान कीजिए। अवश्य ही (यजमानके) उस यज्ञमें पानी बरसता है, जिस यज्ञमें (उक्त) ऋत्विक् (अपने उक्त संकल्पोंके समन्वयसे) यज्ञसे ऐकमत्य होकर अनुष्ठान करते हैं।'

इस विषय पर ब्रह्मर्षि पं. सातवलेकरजी लिखते हैं कि- 'यहाँ याज्ञवल्क्य मुनि निश्चयपूर्वक कहते हैं कि-'वृष्टि होगी।' इससे पता लगता है कि पर्जन्येष्टिमें इस प्रकार मानसध्यान करनेसे कुछ अपूर्व बल पैदा होकर वृष्टि होती होगी।'

स्व. पं. मोतीलालजी शर्मा शतपथ ब्राह्मण-विज्ञान-भाष्यमें लिखते हैं कि- मानवीय मन परोक्ष फलके आकर्षणकी अपेक्षा प्रत्यक्ष भौतिक फलके आकर्षणकी ओर विशेष रूपसे आकर्षित रहता है। उसकी बाह्यदृष्टि पहले इस लोकके फलकी अपेक्षा रखती है। जब उसे किसी कर्मके प्रति यह निश्चय हो जाता है कि- मुझे अमुक कर्मसे प्रत्यक्षमें भी, इसी जीवनके भी कोई भौतिक फल मिल सकता है, तो वह उस कर्ममें अपेक्षाबुद्धिसे लग जाता है। यही क्यों, आधिभौतिक साधनसाध्योंसे सम्पन्न कर्मकाण्डका तो अधिकारी भी वही माना गया है, जिसकी प्राथमिक लक्ष्यभूमि आधिभौतिक ही बनती है। उच्चपीठिका-स्थित जो उच्चाधिकारी केवल परोक्ष-आधिदैविक लक्ष्यप्राप्तिके लिए कर्ममें प्रवृत्त रहते हैं, उनका वह कर्म तो उपासना या ज्ञानयोग ही बन जाता है। प्रवृत्ति-लक्षण कर्मकाण्ड (यज्ञकाण्ड) का सामान्य अधिकारी तो प्रत्येक दशामें भौतिक इस लोकके फलकी अवश्य ही कामना करेगा। प्रकृत आश्रावण-प्रत्याश्रावण-कर्मके उस प्रत्यक्ष भौतिक फलका ही श. १।५।२ की १८, १९, २० इन तीन कण्डिकाओंमें स्पष्टीकरण हुआ है।

प्रत्यक्ष फलोंमें हम ज्योतिश्चक्र (खगोल-आकाश) और भुवनकोष (भूगोल-पृथिवी) इन दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं। हमारी सब भौगोलिक पार्थिव-कामनाओंकी प्रतिष्ठा ऋतुके अनुकूल वर्षा ही है। 'निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु' इत्यादि मन्त्रके अनुसार समय-समय पर पर्जन्य देवताके अनुग्रह (व्यापार) से होनेवाली वर्षा ही ओषधि-वनस्पतिके उत्पादन द्वारा पार्थिव योग-क्षेमका सञ्चालन कर रही है। हमारी समस्त इस लोकको कामनाओंका या पृथिवीकी कामनाओंका केन्द्रीकरण अन्न-वस्त्र पर ही अवलम्बित है। एवं इसकी मूलप्रतिष्ठा खगोलीय वर्षा ही है। वर्षा प्रकृतिका प्रथम प्रत्यक्ष अनुग्रह है और पार्थिव ओषधि-वनस्पति-जल-पशु-वित्तादि द्वितीय अनुग्रह है। १७-१८ इन दो कण्डिकाओंमें पहले खगोलीय प्रथम अनुग्रहका एवं २० वीं कण्डिकामें द्वितीय भौगोलिक पार्थिव अनुग्रहका विश्लेषण करती हुई श्रुतिभ्रान्तजनोंकी उस भ्रान्तिका पूर्ण खण्डन कर रही है, जिस भ्रान्तिमें पडकर वे यह कहते सुने गए हैं कि- "शास्त्रीय कर्मकाण्ड-यज्ञकर्म तो मरनेके बाद ही फल देते हैं, हमारा पहला लक्ष्य अन्न-वस्त्र है। यह चिन्ता शास्त्रीय कर्मकाण्डसे निवृत्त नहीं हो सकती।" अवश्य ही भारतीय यज्ञकाण्ड केवल परलोकके परोक्ष फलोंका ही प्रवर्तक नहीं है किन्तु परोक्षके साथ-साथ प्राकृतिक रहस्यपूर्ण वैज्ञानिक-शिक्षणपूर्वक आधिभौतिकी समस्त प्रत्यक्ष कामनाएँ भी इसी यज्ञकाण्डसे सम्पन्न की जा सकती हैं। यही तो यज्ञके- 'इष्टकामधुक्' विशेषणका फलितार्थ है, जिसे न समझकर अर्धदग्ध भ्रान्तजन शास्त्रानुगत भारतीय वैदिक कर्मकाण्डकी उपेक्षासे अपना सर्वनाश करा रहे हैं।

[क्रमशः]

वेदविद्याकी जाग्रतिसे क्या होगा ?

(लेखक— पं. श्री. दा. सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल पारडी, जि. सूरत)

★

वेदविद्याकी जाग्रतिसे क्या बनेगा ? ऐसा प्रश्न पूछा जाता है। जिस समय वेदविद्या इस भारतवर्षमें जाग्रत थी, उस समय यह भारतवर्ष उच्च शिखरपर विराजमान था। उस समयकी उन्नतिके विषयमें मनु महाराजने कहा है—

एतद्देश-प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥
मनु०

' इस भारतवर्षमें उत्पन्न हुए अग्रजन्मा विद्वानसे पृथिवी परके सब मानव अपने अपने व्यवहार कैसे करें इस विषयकी शिक्षा प्राप्त करें।' यह मनु महाराजका कथन इस इतिहासकी साक्षी दे रहा है कि, उस समय भारतवर्ष सब अन्य देशोंके लोगोंसे अग्रेसर था और सब अन्य देशोंके तरुण यहां आते थे और उत्तम चारित्र्यके संबंधकी उत्तम शिक्षा यहां प्राप्त करते थे। आज भारतवर्षके तरुण अन्य देशोंमें जाते हैं और वहां शिक्षा पाते हैं। यह उलटी बात हो गई है !!! ऐसा क्यों हुआ इसका विचार करना आज भारतीयोंका कर्तव्य हुआ है।

भारतवर्ष उस समय वेदविद्यामें उत्तम प्रवीण था और आज वह वेदविद्याको भूला हुआ है। वेदविद्याके विषयमें मनु महाराज कहते हैं—

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥ मनु०

सेनापतिका कार्य, राज्यशासन चलानेका कार्य, न्यायाधीशका गुन्हेगारको योग्य दण्ड देनेका कार्य और सब लोगोंके आधिपत्यके कार्य अर्थात् छोटेमोटे शासन व्यवस्थाके कार्य वेदरूपी शास्त्र जाननेवाला उत्तम रीतिसे कर सकता है।

इस श्लोकमें मनुमहाराजने राज्यशासनके सभी कार्य वेदरूपी शास्त्रको यथावत् जाननेवाला कर सकता है ऐसा कहा है। इस मनुके विधानकी व्याप्ति कितनी है देखिये—

१ सेनापत्यं- सेनापतिकी सेनाव्यवस्था, सेना सञ्चालन, सेनाके साथ शत्रुपर हमला करना, शत्रुसेनाने हमला किया तो उस शत्रुका पराभव करना आदि सब सेनापतिके कार्य वेदरूपी शास्त्र जाननेवाला पुरुष कर सकता है।

वेदमें मरुत् देवताके सूक्त हैं। ये सेनाकी उत्तम व्यवस्था बतानेवाले सूक्त हैं। इन सूक्तोंमें सेनाकी व्यवस्थाका उत्तम वर्णन है।

२ राज्यं- राज्यशासन करनेके सब कार्य, छोटेमोटे राज्यशासनके कार्य अर्थात् ग्रामरक्षकसे लेकर मुख्यमन्त्री तकके सब कार्य वेदशास्त्र उत्तम रीतिसे जाननेवाला कर सकता है।

३ दण्डनेतृत्वं- न्यायाधीशके अपराधीको दण्ड देनेके सब कार्य वेदशास्त्रको जाननेवाला उत्तम रीतिसे कर सकता है।

४ सर्वलोकाधिपत्यं- राष्ट्रकी ग्रामाधिकारियोंसे लेकर राष्ट्रके मुख्यमंत्री तक जितने राष्ट्रके शासनाधिकारी हैं उन सबके कार्य।

५ वेदशास्त्रवित् अर्हति- वेदरूपी शास्त्र जाननेवाला उत्तम रीतिसे कर सकता है।

वेदके उत्तम ज्ञानकी यह योग्यता है। आज हम देखते हैं कि वेद जाननेवाला ये कार्य यथायोग्य रीतिसे कर नहीं सकता। इसका कारण यह है कि वेदकी सुयोग्य पढाईका कार्य आज कहीं भी नहीं हो रहा है। इस कारण वेदमें जो अनेक विद्याएँ हैं उनको कोई जान नहीं सकता।

मनुस्मृतिमें उक्त श्लोकसे यह स्पष्ट रीतिसे मालूम होता है कि, जिस समय उक्त श्लोक लिखा गया, उस समय वेदके

ज्ञानसे सेनापतिके कार्य, राज्यशासनके कार्य तथा न्यायाधीशके कार्य वेदके ज्ञानी कर सकते थे। आज भी हम यत्न करें तो हमें ज्ञात हो सकता है कि ये सब कार्य अर्थात् सेनासञ्चालन, राज्यशासन और न्यायदानके सब कार्य वेदका ज्ञानी करनेमें समर्थ होगा, यदि वेदका अध्ययन ठीक रीतिसे हो सकेगा।

इन्द्रके मंत्र

इन्द्र देवताके तथा मरुत् देवताके मन्त्रोंके अध्ययनसे सेना सञ्चालन, युद्ध आदिका योग्य ज्ञान हमें प्राप्त हो सकता है।

मरुत् देवता

मरुतोंका नाम 'सप्ती' है क्योंकि प्रत्येक पंक्तिमें मरुत सात सात रहते थे। यह सेनाकी रचनाका ज्ञान है। प्रत्येक पंक्तिमें ७, ऐसी पंक्तियाँ मरुतोंकी होती थीं। इस तरह मरुतोंकी ७ पंक्तियोंमें ४९ मरुत होते थे। तथा प्रत्येक पंक्तिके दोनों ओर एक एक 'पार्श्व रक्षक' होता था। इस पार्श्व रक्षकका कार्य यह होता था कि, उसकी नियुक्ति सेनामें जहां की गयी है, उस बाजूसे शत्रुका हमला हो, तो उससे अपनी पंक्तिका संरक्षण करे। प्रत्येक पंक्तिकी दो बाजूएं होती हैं और प्रत्येक बाजूमें एक एक पार्श्वरक्षक होता था। सेनाकी ऐसी उत्तम व्यवस्था वेदके मन्त्रोंके द्वारा बताई गयी है। जहां ऐसी तैयार सेना होगी, वहां शत्रु किस तरह आक्रमण कर सकता है? सेनापतिका यह कार्य वेदानुशासनसे सब जान सकते हैं। मरुतोंके सब मन्त्र सैन्यव्यवस्था करनेका ही आदेश देते हैं।

इन्द्रके मन्त्रोंमें युद्धविषयक वर्णन किस तरह आते हैं देखिये—

वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम्।
सासह्याम पृतन्यतः॥ (ऋ. १।८।४)

हे इन्द्र! (त्वया युजा वयं) तेरे साथ रह कर हम (शूरेभिः अस्तृभिः) शूरवीरोंके साथ रहकर (पृतन्यतः सासह्याम) सेनासे हम पर हमला करनेवाले शत्रुको पराजित करें।

शूरवीरोंकी सेनाके साथ रहकर हम सेनासे हमला करनेवाले शत्रुका पराभव करें। यहां शत्रुका पराभव करनेका उपदेश है। शत्रुसेनाके साथ आक्रमण करता है। उस समय हमारे पास भी वैसी ही सेना चाहिये, जिससे शत्रुका पराभव किया जा सकता है।

पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः॥
(ऋ. १।११।४)

(पुरां भिन्दुः) शत्रुकी नगरियोंको तोडनेवाला (अमितौजाः) अपरिमित शक्तिवाला (युवा कविः) तरुण ज्ञानी सब कर्मोंको करनेवाला (वज्री) वज्रधारी बहुत प्रशंसित इन्द्र है।

यहां (पुरां भिन्दुः) नगरोंको तोडनेवाला वीर वर्णित है। शत्रुके नगरोंको तोडना और शत्रुके नगरोंपर अपना कब्जा करना यह आसानीसे होनेवाला कार्य नहीं है।

यह एक ही वर्णन देखिये। शत्रुके नगर तोडने हैं तो अपनी तैयारी कैसी कितनी करनी चाहिये, इसका विचार कीजिये। शत्रुका सैन्य कितना है, नगर संरक्षणकी तैयारी शत्रुने की है वा नहीं। शत्रुके पास गोला बारूद तथा अन्य शस्त्रास्त्र कैसे हैं। शत्रुके सैनिक किस प्रकारकी लडाई करते हैं, शत्रुका स्थान कैसा है इत्यादि बातोंका विचार करके अपनी तैयारी करनी चाहिये। अपनी तैयारी शत्रुसे अच्छी रही, तभी अपने विजयकी संभावना होसकती है। और यदि अपनी तैयारी शत्रुसे अच्छी न रही तो अपना पराभव होगा।

वेद शत्रुसे लडनेके विषयमें ये सूचनाएं देता है।

शत्रु कितने बडे थे

वेदके वर्णनोंमें शत्रु कितने बडे थे और कितने बडे शत्रु-सैन्यसे मुकाबला करना पडता था, इस विषयमें भी विचार करने योग्य वेदका कथन है—

अध्वर्यवो यः शतं शंबरस्य
पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रं
अपावपद् भरता सोममस्मै॥ ऋ. २।१४।६

हे अध्वर्युलोगो! (यः शंबरस्य शतं पुरः बिभेद) जिसने शंबरासुरके सौ नगरोंको तोडा, तथा इन्द्रने (शतं सहस्रं अपावपत्) एक लाख शत्रु सैनिकोंका नाश किया।

सौ नगरोंका तोडनेका ही कार्य कितना बडा है। नगरोंके चारों ओर किलेकी मजबूत दिवारें रहतीं थी। ऐसे शक्तिशाली शत्रुके सौ नगर तोडना सहज बात नहीं है। इसके

लिये अपनी सेना कैसी बलवती चाहिये, इसका विचार कीजिये। शत्रुके नगर भी सुरक्षित थे। वहां भी संरक्षणकी सुव्यवस्था थी। ऐसे सौ शत्रुके नगर तोडनेके लिये अपनी सेना-का बल कैसा होना चाहिये, इसका विचार ठीक तरह करनेसे स्पष्ट होगा कि, अपनी तैयारी भी अच्छी होनी चाहिये।

१ शतं सहस्रं वर्चिनः यः अपावपत्— एक लाख शत्रुके सैनिकोंका इन्द्रने नाश किया। शत्रुके एक लाख सैनिकोंका नाश करनेके लिये अपने सैनिक भी वैसी ही बडी संख्यामें होने चाहिये इसमें बिलकुल संदेह नहीं।

वेद ऐसे बडे सेना विभाग रखनेका उपदेश देता है। इन्द्रने इतने शत्रु सैनिक मारे ऐसा कहनेसे इन्द्रके पास कितनी बडी सेना थी यह प्रश्न उसी समय सामने आता है और वैसी बडी सेना इन्द्र अपने पास रखता था यह मालूम भी होता है।

इसका जो विचार करेंगे उनको अपना राष्ट्र कितना बडा है, अपने शत्रु कितने हैं, उनका मुकाबला करनेके लिये अपनी सेना कितनी होनी चाहिये इत्यादि विचार मनमें आते हैं। इससे अपनी युद्धकी तैयारी जैसी होनी चाहिये वैसी है, या न्यून है, इसकी तुलना करनी पडती है और इस तुलनाके विचारसे वीर नेता अपने राष्ट्रकी संरक्षणकी योग्य तैयारी कर सकते हैं। वेदसे हरएक बाजूसे ऐसे उप-देश मिलते हैं। इसलिये वेद मंत्रोंका मनन करके योग्य बोध लेना चाहिये।

वेदका उपदेश हरएक बातमें मिलता है। यहां हमने युद्धक्षेत्रका ही विचार किया है। परंतु राज्यविषयक जितने प्रश्न हैं, उन सब प्रश्नोंके उत्तर इसी प्रकार अन्यान्य मंत्रोंसे प्राप्त होते हैं।

अतः मनुने कहा है कि सेना संचालनका कार्य, राज्य चलानेके अनेक कार्य, न्यायाधीशके कार्य तथा राज्यशासनके जितने कार्य हैं उन सब कार्योंको वेद जाननेवाला कर सकता है यह सत्य है।

वेदका अध्ययन इसी दृष्टिसे करना चाहिये। वेदका पठन करनेसे ही केवल यह ज्ञान नहीं हो सकता। वेदका अर्थ, वेद मंत्रोंके पदोंके अर्थोंकी संगति देखनेसे ठीक तरह मालूम हो सकता है।

बहुत वर्षोंसे भारत भरमें वेदमंत्रोंको कण्ठस्थ करनेकी रीति शुरू है। इस पद्धतिने वेदमंत्रोंको सुरक्षित रखा यह सत्य है, परंतु इस कण्ठस्थ करनेकी पद्धतिसे वेदमंत्रोंके अर्थोंकी ओर दुर्लक्ष्य हुआ यह भी उतना ही सत्य है।

हमें जो आज अत्यंत आवश्यकता है वह ठीक अर्थ जान-नेकी है। वेदका ठीक अर्थ न जाननेसे हमारी बडी हानि हुई है। वह हानि दूर करनेके लिये वेदका यथार्थ अर्थ प्रकाशित करना और उसका प्रचार करना अत्यंत आवश्यक है।

वेदविद्याकी ऐसी जाग्रति भारतमें हो और वेदके ज्ञानसे जो उन्नति होनी संभावित है वह भारतकी उन्नति हो यही हम चाहते हैं।

प्रज्ञा-दर्शन

(लेखक— श्री डॉ. वासुदेवशरण, काशी विश्वविद्यालय)

कथाके चलते हुए प्रवाहके बीचमें कुछ देरके लिए रुककर प्रज्ञाशील ग्रन्थकारने दो विशिष्ट पर्वोंको स्थान दिया है। पहला प्रजागर पर्व है जिसमें प्राचीन भारतीय नीतिशास्त्र या जीवनके प्रज्ञाशास्त्रका बहुत ही सुन्दर विवेचन है। विदुर वक्ता और धृतराष्ट्र श्रोता है। दूसरा सनत्सुजात पर्व है जिसमें उस आध्यात्मशास्त्रका जो उपनिषद्युगकी पृष्ठभूमिमें विकसित हुआ था, अत्यन्त श्लाघनीय सारांश दिया गया है।

प्रजागरपर्वमें आठ अध्याय और पांच सौ तीस श्लोक हैं। यह प्रकरण विदुरनीतिके नामसे लोकमें प्रसिद्ध है। इसे प्रजागर क्यों कहा गया इसका हेतु इस प्रकार है— जब सञ्जयने तत्काल पूरी बात न कही तो धृतराष्ट्रके निर्बल मनमें किसी भारी अनर्थ की कल्पना हुई, इस चिन्तामें उनकी नींद चली गई। सञ्जय न जाने क्या संदेश लाया है, यह सोचकर वे बहुत अस्वस्थ बन गए। प्रजागरका अर्थ जागरण या निद्राक्षय है। धृतराष्ट्रने दूत भेजकर तुरन्त विदुरको बुलवाया विदुर स्वयं बडे प्रज्ञाशील थे। वे धृतराष्ट्रके लगभग रात-दिनके साथी थे और धृतराष्ट्र उनकी समझदारीके कायल, उन्हें बहुत मानते भी थे। लिखा है कि धृतराष्ट्रसे मिलनेके लिए विदुरको बाधा न थी। राजासे मिलनेके लिये औरोंको समय नियत करना पडता था, पर विदुरको छूट थी जब चाहें मिलें। धृतराष्ट्र विदुरके लिए कभी अकाल्य न थे, अर्थात् सदा सुलभ थे।

आरम्भमें ही विदुरको महाप्राज्ञ कहा गया है। सूत्र रूपमें प्रज्ञाकी व्याख्या, यही इस विशिष्ट प्रकरणका शीर्षक है। प्रज्ञावान् व्यक्ति प्राज्ञ कहा जाता था। उपनिषदोंके युगमें जहां अध्यात्म और दर्शनतत्वका इतना विकास हुआ वहीं उसका जो अंश मानव-जीवनकी व्यावहारिक आवश्यकताके लिए निचोड लिया गया, उसी समझदारीका नाम प्रज्ञा था अथवा कह सकते हैं कि मानवने निजीजीवनमें और सामाजिक व्यवहारोंमें समझदारीका जो सुन्दर धरातल तैयार किया था उसी दृढ भूमि पर ऊँचे उठते हुए लोग उपनिषदोंके अध्यात्म बोध तक पहुंच सके होंगे। प्रज्ञा एक मूल्यवान् शब्द बन गया था। आज अंग्रेजीमें जिसे कामनसेन्स या हिन्दीमें समझदारी कहते हैं वह प्रज्ञा शब्दसे अभिहित था। उस युगके ही आसपास यूनानमें भी प्रज्ञाका दृष्टिकोण विकसित हुआ था, जैसा हम सुकरात आदि विचारकोंके दृष्टिकोणमें पाते हैं, जो यह चाहते थे कि मानव प्रत्येक क्षेत्रमें व्यावहारिक बुद्धिमानीसे काम ले और बुद्धिपूर्वक विचारशैलीसे ही सर्वत्र विचार करे। प्रज्ञाको बोल-चालकी पाली या मागधी भाषामें पञ्ञा और अर्धमागधीमें पण्णा कहा जाता था। हमारा विचार है कि बोलीके किसी भेदमें प्रज्ञाका रूप पण्णासे पंडा हो गया। इसका वही अर्थ है जो प्रज्ञाका था, अर्थात् हर बातमें और हर काममें बुरे और भलेकी पहचान। कर्म और विचारमें ऐसे सुलझे हुए व्यक्तिको ही पंडित कहने लगे। पंडित, प्रज्ञावान् और प्राज्ञका एक ही अर्थ था। प्रज्ञाका मुख्य लक्षण यह है कि वह 'संसारिणी' होती है, अर्थात् प्रत्येक बात पर वह समाजकी स्थिति या जीवनके दृष्टिकोणसे विचार करती है। धर्म, अर्थ, काम यह त्रिवर्ग प्रज्ञाका मुख्य विषय है—

> यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्तते।
> कामादर्थं वृणीते यः स वै पंडित उच्यते॥

विदुरने आरम्भमें पंडित और मूर्ख इनकी व्याख्या की— 'पंडित या प्राज्ञ वह है जो जीवनमें प्रशस्त ध्येयको चुनता है, निंदितमें मन नहीं देता। श्रद्धा उसके कर्मोंका मुख्य लक्षण है। वह जो लक्ष्य बनाता है उससे क्रोध, दर्प या सम्मानकी इच्छा उसे हटा नहीं पाती। वह जो सोचता है, उसके कर्मसे ही वह व्यक्त होता है, कहनेसे नहीं। शीत, उष्ण, गरीबी, अमीरी ये उसके कार्यमें विघ्न नहीं डालते। वह शक्तिके अनुसार ही इच्छा करता है और शक्तिसे ही कर्मकी मात्रा बनाता है। बिना पूछे हुए दूसरेके काममें हस्तक्षेप नहीं करता। यह पंडितकी सबसे बडी पहचान है कि वह समझ बूझकर अपने कार्योंका निश्चय करता है कामवश नहीं। जो नहीं मिल सकता उसे वह चाहता नहीं। जो नष्ट हो चुका है उसका सोच नहीं करता। वह आपत्तिमें घबराता नहीं। यही

पंडितकी पहचान है। जो निश्चय करके उस पर बढ चलता है, बीचमें रुकता नहीं, जिसने अपने मनको साधकर समयसे अधिकसे अधिक दुहना सीखा है वही पंडित है। गंगाके गहरे दहके समान पंडितको क्षोभ नहीं होता। उसे न सम्मानसे हर्ष और न अपमानसे ताप होता है। वह कामकी युक्ति और मनुष्योंसे व्यवहारका उपाय जानता है। जो आर्य जीवनकी मर्यादाओंका रक्षक है,· जिसकी प्रज्ञा उसके स्वाध्यायके अनुरूप है वही पंडित है।

जो दरिद्र होकर बडी–बडी इच्छायें करता है, जो विना कर्मके फल चाहता रहता है, वह मूढ है। जो अपने अर्थको त्याग कर दूसरेके काममें उलझा रहता है जो मित्रके काममें मिथ्या व्यवहार करता है, वह मूढ है। जो कर्तव्यको टालता रहता है, सब जगह शंकाशील बना रहता है, जिसे शीघ्र करना चाहिए उसे विलम्बसे करता है, वह मूढ है। जो विना बुलाए जाता है, विना पूछे बोलता है, जो अपनी त्रुटियोंको न देखकर उनके लिए दूसरों पर कटाक्ष करता है, जो निठल्ला रहकर भी अलभ्य वस्तु पानेकी इच्छा करता है, वह मूढ है। धनुर्धारीका छोडा हुआ बाण एक व्यक्तिको भी मार सके या न मार सके, पर बुद्धिमानकी चलाई हुई युक्ति सारे राष्ट्र और राजाको नष्ट कर डालती है। इस कथनसे सूचित किया गया है कि प्रज्ञावादीदर्शन जीवनके सब व्यवहारोंको चलानेके लिए और विशेषतः राजधर्मके लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण था। वह जीवनोपयोगी सब दर्शनोंमें सिरमौर है।

हे राजन्! इस विश्वका कर्ता एक अद्वितीय ब्रह्म है, जिसे तुम नहीं जानते। जैसे समुद्र पार करनेके लिये नाव उपयोगी है, वैसे ही अकेला सत्य स्वर्ग तक पहुंचानेकी सीढी है। जैसे सांप बिलशायी चूहेको खा लेता है, वैसे ही जो राजा दिग्विजयके लिए नहीं उठता और जो ब्राह्मण अपने पांडित्यके प्रकाशके लिए विदेश यात्रा नहीं करता, उन दोनोंको यह भूमि ग्रास लेती है। दो तुकीले कांटे शरीरको सुखानेवाले हैं, एक निर्धनकी कामना और दूसरे असमर्थका कोप। हे राजन्! मनुष्य तीन प्रकारके होते हैं— उत्तम, मध्यम और अधम। उन्हें उनके योग्य कामोंमें लगाना चाहिए। अल्पबुद्धि, दीर्घसूत्री, आलसी और चापलूसोंके साथ परामर्श करना पंडितको उचित नहीं। बडा–बूढा संबंधी, टोटेमें पडा हुआ कुलीन, दरिद्री मित्र, निःसन्तान बहन, इन चारोंका प्रतिपालन उत्तम गृहस्थका कर्तव्य है। बृहस्पतिने इन्द्रसे कहा था कि चार बातें तुरन्त फल दिखाती हैं– देवताओंका संकल्प, प्रज्ञाशीलकी युक्ति, विद्वान्‌की साधना और पाप कर्मोंका नाश। मनुष्यको उचित है कि पिता, माता, अग्नि, आत्मा और गुरु इस पंचाग्निकी नित्य सेवा करे।

पांच इन्द्रियोंमेंसे यदि एक भी छिद्रयुक्त हो, तो उसी रास्ते मनुष्यकी प्रज्ञा नष्ट होजाती है। जैसे नीचेके एक छेदसे मशकका सारा पानी बह जाता है। निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और कामको लम्बा टालनेकी प्रवृत्ति इन छः दोषोंको छोडनेमें ही भलाई है। सत्य, दान, अनालस्य, अनसूया, क्षमा और धृति इन छै गुणोंको रखना ही अच्छा है। ये आठ बातें हविष-का मथा हुआ मक्खन है– मित्रोंका समागम, महान् धन-प्राप्ति, पुत्रका सुख, स्त्रीका सुख, समय पर मीठी बातें, अपने वर्गमें सम्मिलन, इष्टवस्तुकी प्राप्ति और लोकमें सम्मान। जिस घरमें नव द्वार हैं, तीन खम्भे हैं, पांच सूचना लाने-वाले साक्षी या सेवक हैं और जिसमें क्षेत्रज्ञ आत्मा स्वयं बैठा है ऐसे इस शरीररूपी गृहको जो ठीक प्रकारसे जानता है वही परम बुद्धिमान् है। प्रज्ञा दर्शनमें समाज और निजी जीवन, दोनोंका समान महत्व था, क्योंकि दोनोंको सफलतासे चलानेके लिए प्रज्ञा या समझदारीकी जरूरत है।

इसके अनंतर एक प्राचीन कथानकका आश्रय लेते हुए बीस श्लोकोंमें असुरोंके राजा सुधन्वा द्वारा अपने पुत्रको सिखाई गई राजनीतिका सारांश कहा गया है। अगले अध्यायमें धृतराष्ट्र प्रश्न करते हैं कि युधिष्ठिरका वह प्राज्ञ युक्त आचार क्या है जिसे तुम अभी देख आये हो। यहां एक श्लोकमें धृतराष्ट्रकी भीतरी स्थिति भी उसीके मुखसे प्रकट होगई है– 'हे विदुर! मैं पापकी आशंका करता हूं। मुझे पाप ही दिखाई पडता है। इसलिए मेरा मन भीतरसे घबराया हुआ है। तुम जो मेरे लिए पथ्य समझो कहो।' ऐसे सरल भावके उत्तरमें विदुरने भी उदारता प्रकट करते हुए कहा– 'जो जिसका हितू है वह उसे अच्छी या बुरी, प्रिय या अप्रिय सब बातें बता देता है। मैं कौरवोंका हित चाहता हूं। इसलिए उनके कल्याणके लिये धर्मयुक्त बात कहूंगा। हो सकता है कपटके काम भी सफल होते जान पडें, पर तुम उधर मन मत करो। ठीक युक्तिसे किया हुआ काम यदि सिद्ध न भी होता हो, तो भी उससे मनको छोटा मत करो। कर्मकी जो रुकावटें हैं उनको समझकर कर्म करे, हडबडीमें नहीं। जो अपने राज्यके कोश, जनपद, दण्ड, वृद्धि और क्षय एवं सेना आदिकी उचित मात्राके विषयमें

उनकी जानकारी नहीं रखता वह राज्यमें कायम नहीं रह सकता।

जो इन्हें ठीकसे जानकर इनकी देखभाल करता है और धर्म और अर्थकी जानकारी रखता है, वह राज्यमें दृढता प्राप्त करता है। राज्य मिल गया, बस इतना ही पर्याप्त नहीं है। यदि राज्य चलानेकी शिक्षा नहीं है तो राज्यलक्ष्मी नष्ट हो जाती है। मछली बंशीमें लगा हुआ चारा तो देखती है, भीतर-की कंटिया नहीं देखती। ऐसे ही जो कर्मके भीतर छिपी अडचनोंको नहीं देखता, उनके बाहरी रूपोंको देखता है, वह नष्ट हो जाता है। जिस ग्रासको सटका जा सके, जो सटका हुआ पच जाय और जो पचा हुआ अंतमें हित करे उसीको खानेमें भलाई है। वृक्षके कच्चे फलोंको चुननेवाला उसमें रस नहीं पाता। उसके लिए बीज भी नष्ट होजाता है। पर समय पर पका हुआ फल तोडनेसे रस और बीज दोनों मिलते हैं।

जैसे भंवरा फूलोंसे रस चुनता है वैसे ही भिन्न-भिन्न मनुष्योंसे अपने उपयोगकी वस्तुओंका संग्रह करना चाहिए। फूलोंको चुनना उचित है, उनकी जड काटना उचित नहीं। बगीचेमें जैसा माली करता है वैसा करे, कोयला फूंकनेवालेके जैसा व्यवहार न करे। काम करनेसे क्या लाभ होगा, न करनेसे क्या हानि होगी, इस बातका विचार करके तब फिर करने या न करनेका निश्चय करे। जिसमें किया हुआ परिश्रम निरर्थक हो ऐसा कार्य सदा अकरणीय है। बुद्धिमान् व्यक्ति अपनी प्रज्ञासे किन्हीं ऐसे कामोंको सोचता है जो आरम्भमें छोटे हैं पर फल बहुत देते हैं और फिर तुरन्त उन्हें करने लगता है, उनमें विघ्न नहीं करता। जो सबको ऋजुभावसे देखकर अपनी जगह बैठे-बैठे ही चुपचाप आंखसे सबको पी जाता है ऐसे राजाको प्रजा चाहती है। मन, वाणी, कर्म और निगाहसे जो लोकको प्रसन्न करता है उसे ही लोक चाहते हैं। व्याघ्रसे जैसे पशु डरते हैं वैसे ही यदि राजासे उसकी प्रजा डरे तो यदि समुद्रान्त राज्य भी मिल जाय तो किस कामका? वायु जैसे मेघोंको छिटका देती है, वैसे ही राजा अनीतिसे बापदादोंका राज्य खो देता है। पहलेसे सज्जन जिस धर्म मार्ग पर चलते आए हैं, उस पर चलनेवाले राजा-के लिए धरती धनधान्यसे पूर्ण होजाती है। पराए राष्ट्रको छिन्न-भिन्न करनेमें जो व्यर्थश्रम जाता है उसे यदि स्वराष्ट्रके प्रतिपालनमें लगाया जाय तो क्या कहना—

> यः एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रावमर्दने।
> स एव यत्नः कर्तव्यः स्वराष्ट्रपरिपालने॥
> (उद्योग ३४।२८)

राज्यलक्ष्मीका मूल धर्म है। गायें गन्धसे, ब्राह्मण वेदसे, राजा चरोंसे और इतरजन आंखोंसे वस्तुका ज्ञान करते हैं। सिल्ला बीनकर खानेवाला जैसे धीरभावसे उसे बीनता है, ऐसे ही जहां-तहांसे बुद्धिमानोंके सुकर्म और वचनोंका संग्रह राजाओंको करना चाहिए। कडवी गायको दुहनेमें महाक्लेश होता है, पर सहेज गायके लिये यत्न नहीं करना पडता। जो विना तपाये झुक जाता है उसे कौन तपाता है? जो स्वयं झुका हुआ काष्ठ है उसे झुकाना नहीं पडता। इन उपमा-ओंको मनमें रखकर जो अपनेसे बलवान् है उसके सामने झुक जाना चाहिए क्योंकि बलवान्के सामने झुकना ऐसा ही है जैसे इन्द्रको प्रणाम करना—

> इन्द्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे।
> (उद्योग ३४।३५)

पशुओंका बन्धु मेघ है। राजाओंके बन्धु उनके मित्र होते हैं। स्त्रियोंके बन्धु पति और ब्राह्मणोंके बन्धु वेद हैं। धर्मकी रक्षा सत्यसे, विद्याकी नियम-पूर्वक अध्यापनसे, सौन्दर्यकी साज शृंगारसे और कुलकी आचारसे होती है। मेरी समझसे आचारहीन व्यक्तिकी कुलीनताका कोई अर्थ नहीं अन्त्यवर्णमें जन्म लेने पर भी सदाचारसे ही व्यक्तिकी विशेषता होती है (३४।३६)। पराए धन, रूप, फल, कुल, सुख और सौभाग्यमें ईर्ष्याकी वृत्ति अन्तहीन रोग है। विद्यामद, धन-मद, कुलमद, मूर्खोंके लिए ये मद हैं। सज्जनोंके लिए ये ही संयमके हेतु बन जाते हैं।

प्रज्ञा दर्शनके अनुसार जीवनमें सबसे अधिक महत्व शील या सदाचारका है। सुन्दर वस्त्रोंसे सभा, घरमें गौ होनेसे भोजन, सवारी होनेसे मार्ग और शील होनेसे सब कुछ जीत लिया जाता है। मनुष्यमें शील प्रधान है। जिसका शील जाता रहा उसके जीनेका कोई अर्थ नहीं, चाहे उसके धन और बन्धु कितने भी हों। नमककी डलीके साथ जो निर्धन रोटी खा लेते हैं वह भी उन्हें तरावट देती है क्योंकि स्वाद भूखमें है। रईसोंके पास भूख कहां? श्रीमन्तोंमें प्रायः भोजनकी शक्ति नहीं होती पर दरिद्रोंको काष्ठ भी पच जाता है। बेरोकटोक विषयोंमें छूटी हुई इन्द्रियोंसे लोग दुःख पाते हैं जैसे राहुसे नक्षत्र। जो अपनेको न जीतकर आमात्य और

अमित्रोंको जीतने चलता है वह दुःख पाता है। अपनेको ही पहले एक देश मानकर यदि जीत लिया जाय तो फिर आमात्य और अमित्रोंका जीतना सफल होगा।

यह शरीर रथ है, आत्मा सारथी है, इन्द्रियां अश्व हैं। कुशल व्यक्ति सधे हुए अश्वोंसे धीर रथीके समान सुखपूर्वक यात्रा करता है। इन्द्रियां वशमें न हों और बहुत साधन भी मिल जाय तो भी राजा ऐश्वर्यभ्रष्ट होजाता है। आत्मा ही आत्माका बन्धु है और आत्मा ही आत्माका शत्रु है अतएव संयत मन, बुद्धि और इन्द्रियोंकी सहायतासे स्वयंको पहचानना चाहिए। हे राजन्! काम और क्रोध रूपी दो घडियाल इस शरीर रूपी बारीक बुने हुए जालमें छिपकर बुद्धिको कुतर रहे हैं। पापीका साथ न छोडे तो अपापीको भी दंड भुगतना पडता है, जैसे सूखे पेडके साथ गीलेको भी जलना पडता है। नीच, बुद्धिमानों पर आक्रोश और निन्दासे चोट करते हैं। उसका पाप वक्ता पर पडता है, क्षमाधारी छूट जाता है। गुणीका बल क्षमा है।

हे राजन्! वाक् संयम सबसे कठिन है। कुल्हाडीसे कटा हुआ वन फिर शनैः शनैः फुटाव ले लेता है। पर वाणीका चोट खाया हुआ नहीं पनपता, क्योंकि वचनका वाण हृदयको भी छेद डालता है। मूर्ख अपने मुंहसे टपाटप वाग्बाण चलाया करता है पर जिसे वे लगते हैं उसका तो रातदिन मरण ही हो जाता है। बुद्धिमान्को चाहिए कि ऐसे मर्मघाती तीर दूसरे पर न छोडे। देवता जिसका पराभव सोचते हैं उसकी बुद्धि पहले हर लेते हैं। हे महाराज धृतराष्ट्र! बुद्धि आपके पुत्रोंसे विदा ले चुकी है और आप भी पाण्डवोंसे विरोध रखकर इस बातको नहीं समझते। लक्षण सम्पन्न युधिष्ठिर त्रिलोकीका राज्य पाने योग्य है। आपको वे गुरु मानते हैं। अतएव उन्हें राज्य दें।

विदुरने धृतराष्ट्रके व्यक्तित्वकी उधेड-बुन करके यह निष्कर्ष निकाला कि इस व्यक्तिमें आर्जवकी कमी है, इसका सोचना कुटिलतासे भरा है। ऊपरसे थोडी देरके लिए पाण्डवोंके हितका जबानी जमा खर्च करके फिर भीतरसे उनकी काट सोचता है और अपने पुत्रोंका पक्ष करता है। इसलिए विदुरने धृतराष्ट्रके लिए सब गुणोंका निचोड आर्जव या हृदयकी सिधाई माना और कहा– 'सब तीर्थोंका स्नान एक ओर और सब भूतोंमें आर्जवका व्यवहार दूसरी ओर, या तो ये बराबर उतरेंगे या आर्जव कुछ भारी बैठेगा।

इसलिए हे राजन्! अपने इन पुत्रोंके प्रति ऋजुताका व्यवहार करो। अपनी बातको दृढतासे बैठानेके लिये विदुरने यहां एक चुटकुला सुनाया जिसे वे पहले भी कौरव-सभामें द्रौपदीके प्रश्न पूछनेके अवसर पर सुना चुके थे (सभापर्व ६१।५८-७९)। अंगिराके पुत्र सुधन्वा और प्रह्लादके पुत्र विरोचन, दोनों युवकोंका मन केशिनी नामक कुमारी पर गया। कन्याने कहा– 'तुम दोनोंमें जो श्रेष्ठ हो मैं उसीकी हूं।' दोनों उद्धत युवकोंने जानकी बाजी लगा दी। विरोचनने कहा– 'प्रश्नका निर्णय करावें। सुधन्वाने विरोचनके पिता प्रह्लादको ही पंच वद दिया। प्रह्लाद बडे फेरमें पडे, पर सत्यका पद ऊंचा है। पुत्र हो या दूसरा हो, साक्षी देते समय सच ही कहना धर्म है। इसलिए प्रह्लादने निर्णय दिया– 'अंगिरा मुझसे श्रेष्ठ हैं। अतएव हे विरोचन! सुधन्वा तुमसे उत्तम है।' प्रह्लादके इस अविचल सत्यसे सुधन्वा बहुत प्रभावित हुआ और उसने विरोचनको प्राण भिक्षा देते हुए कहा– 'मेरे सामने उस कुमारीके पैर धोते जाओ।' विदुरने यही समझाया कि पुत्रोंके लिए झूठका सहारा मत लो। देवता लाठी लेकर किसीको मारने नहीं आते। जिसकी रक्षा चाहते हैं उसे बुद्धि बांट देते हैं—

न देवा यष्टिमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्धया संविजन्ति तम्॥
(उद्योग ३४।३५)

मायावीको उसके पापसे वेद भी पार नहीं लगाते। पंख निकलने पर पंछी घोंसलेसे उड जाते हैं। वैसे ही अन्तकालमें उसे वेद छोड जाते हैं। यदि मानसे अग्निहोत्र करे, मानसे मौन साधे, मानसे अध्ययन करे और मानसे यज्ञ करे, इनसे भय ही होता है अभय नहीं। इसके बाद विदुरने सत्य, शील, अनसूया आदि हृदयके शोभन गुणोंके विषयमें बहुत कुछ धृतराष्ट्रसे कहा। अधर्मसे प्राप्त धनसे जो अपना छिद्र ढकता है वह छिद्र ढका नहीं जाता उसमें और भी दरार पड जाती है। दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन और कर्णका पल्ला पकड कर तुम किस भलाईकी आशा करते हो? पाण्डव तुम्हें पिता समझते हैं तुम भी उन्हें पुत्र करके मानो।'

[क्रमशः]

गौधनकी रक्षा

(लेखक— श्री महेशदत्त शर्मा, वाराणसी)

★

गौको माताका पूजनीय स्थान देकर हमारे पूर्वजोंने उसके महत्वको सर्वोपरि मान लिया है। ऋग्वेदमें लिखा है—

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां,
स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय,
मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥
(ऋग्वेद ८।१०१।१५)

अर्थात् गाय रुद्रोंकी माता, वसुओंकी पुत्री, अदितिके पुत्रोंकी बहिन और घृतरूप अमृतकी निधि है, प्रत्येक विचारवान् पुरुषको मैंने यही समझा कर कहा है कि निरपराध एवं अवध्य गौका वध न करो।

प्राचीन धर्मग्रन्थों तथा इतिहासके पृष्ठोंमें गोरक्षाके लिये अनेक उदाहरण ऐसे हैं जिनसे हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। महर्षि वशिष्ठने गौकी रक्षाके लिए विश्वामित्र द्वारा दिये गये कष्टोंको सहन किया। अर्जुनने गोरक्षाके लिये बारह वर्ष तकका वनवास स्वीकार किया। महाराज दिलीपने गौकी रक्षाके लिए अपने प्राणोंकी बाजी लगा दी। महर्षि जमदग्नि ने गोरक्षाके लिए अपना सिर दे दिया। महर्षि च्यवनने अपने शरीरके बदले राजा नहुषका राज्य स्वीकार न करके एक गौको स्वीकार किया। वीर शिवाजीने बारह वर्षकी आयुमें बीजापुरके नवाबी शासनमें गोहत्यारेका हाथ काट डाला। महाराज श्री पृथ्वीराजने महमूदगौरीसे युद्धके समय जब कि उसने अपनी सेनाके आगे गाय बैलोंकी पंक्ति खड़ी कर दी थी अपनी शस्त्रसज्ज सेनाको आक्रमणका आदेश नहीं दिया। परिणामस्वरूप जीवन तथा राज्यसे हाथ धोना पड़ा और गोरक्षाके लिए गुरु बन्दाने शस्त्र ग्रहण किया। तात्पर्य यह कि गोरक्षाकी महत्ता सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं है, वह स्वयंसिद्ध है।

यह निर्विवाद है कि प्रत्येक स्त्री पुरुष तथा बच्चोंके लिये गौ माताके समान उपादेय तथा हितकारिणी है ऐसा कोई वर्ग या सम्प्रदाय नहीं है जो गोवंशसे लाभान्वित न होता हो। हमारी श्रद्धा तो इस सीमातक पहुँच चुकी है कि हम गौमें तैतीस करोड़ देवताओंका निवास मानते हैं और उसकी पूजा करते हैं। गोरक्षाके प्रश्नके साथ सांड अथवा बैलकी रक्षाका प्रश्न निहित है। वेदोंमें गोवंशको अर्थात् गौ और बैलको 'अवध्य' कहा गया है, अघ्न्यका अर्थ है अवध्य। लेकिन देशसे अंग्रेजोंके चले जानेके बाद भी हमारे न्याय अधिकारियोंके मस्तिष्कमें अभी अंग्रेजियतकी बू ज्योंकी त्यों है। कृषिप्रधान देश भारतमें बैलोंकी उपेक्षा करके केवल कागजी योजनाओंसे सहकारी खेती की सफलता या अन्नके अभावकी पूर्ति होना दिवा स्वप्नके समान है। हमें यह तय कर लेना आवश्यक है कि राष्ट्रिय स्तर पर गोवंशका क्या स्थान है।

अब तक सोलह राज्योंमें गोवध निषेध कानून बन चुके हैं, लेकिन उत्तर प्रदेशके मुहम्मदजान, बिहारके अब्दुल-हमीद कुरेशी और मध्यप्रदेशके हाजी मुहम्मदशफी द्वारा सर्वोच्च न्यायालयमें चुनौति दी जाने पर जो निर्णय प्रकाशमें आया है उससे गोवंशकी हत्यामें कमी होनेकी आशा बहुत कम है। पशुवधके व्यापारियोंकी समादेश याचिकाओं पर सर्वोच्च न्यायालयने घोषित किया है कि बिहार, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेशके कानूनोंके अन्तर्गत २० या २५ वर्षकी आयु तकके बैलों, सांडों और भैंसोंकी हत्या करने पर रोक लगानेवाली जो धाराएं हैं वे अनुचित हैं, अतः तीनों समादेश याचिकाओंको स्वीकार करते हुए सर्वोच्च न्यायालयकी संविधान बेंचने कहा है कि हम लोग स्पष्टतः इस विचारके हैं और विशेषज्ञोंकी भी करीब-करीब यही राय है कि बैल, सांड और भैंसे १५ वर्षकी आयुके बाद प्रजनन या गाड़ी खींचने आदिके कामके नहीं रह जाते। इस उम्रके बाद यदि उनका कोई उपयोग रह भी जाता है तो वह कामके अयोग्य पशुओंको खिलाने और रखने आदिके

व्ययको देखते हुए अलाभकर होता है। अतः अदालतका निर्णय है कि बिहारके पशु संरक्षण (संशोधित) कानून १९५८ की धारा ३ और मध्य प्रदेशके कृषि पशु संरक्षण कानून १९५९ की धारा ४ (२) (ए) व्यापार चलानेके मौलिक अधिकार पर अनुचित प्रतिबन्ध लगाते हैं। इनको जनहितमें नहीं कहा जा सकता। अतः इस सीमा तक वे संवैधानिक दृष्टिसे अवैध हैं।

अदालतने कहा है कि बिहार कानूनके अन्तर्गत बनाया गया नियम ३ भी खराब है।

इस कानूनके अन्तर्गत कहा गया है कि वधके लिये प्रमाण पत्र देनेके अधिकारी पशु डाक्टर और जिला बोर्ड, म्युनिसिपल बोर्ड आदिके अध्यक्ष संयुक्त रूपसे होंगे। अदालतने लिखा है कि यह समझना कठिन है कि प्रमाण-पत्र देनेके लिए पशु डाक्टर पर जो इसका विशेषज्ञ होता है, क्यों विश्वास नहीं किया गया है।

सर्वोच्च न्यायालयमें उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेश-की राज्योंकी ओरसे पशुवधके व्यापारियोंकी याचिकाओंका विरोध किया गया था किन्तु वह मान्य नहीं हुआ। यहां उस निर्णय पर कोई टीका टिप्पणी अरण्यरोदनके समान निरर्थक है।

गांधीजीने ठीक कहा है कि—

' जो कानून हमें अच्छे न लगते हों उन्हें माननेकी शिक्षा तो हमारी मर्दानगीको बट्टा लगानेवाली है, धर्म विरुद्ध है और गुलामीकी हद है।

भूतपूर्व कांग्रेस अध्यक्ष श्री ढेबर भाई कहते हैं कि पशु-धन द्वारा देशमें २० लाख लोगोंको रोजी मिलती है। लगभग ६ करोड लोगोंका यह उपव्यवसाय है। देशकी कुल १०,००० करोड वार्षिक आमदनीमें से १५०० करोडकी आमदनी पशु-धनके द्वारा होती है। ये आंकडे क्या पशुधनकी रक्षाकी दृष्टिसे उपेक्षाके योग्य हैं? किन्तु जनतामें जागृति नहीं है, जनता सदियोंकी गुलामीमें जकडी रहनेके कारण भीरू बन गई है, जनतामें जोश और साहस नहीं है कि वह किसी प्रकारके अन्यायका खुलकर विरोध करनेमें दृढताका परिचय दे। कुछ इने-गिने क्षुब्ध नेताओंके दौरे और भाषण क्षणिक जोश पैदा करते हैं। आवश्यकता है कि हमारी मर्दानगीको बट्टा लगानेवाली धाराओं तथा उपधाराओं पर पुनः विचार हो और उनमें यथेच्छ संशोधन किया जावे। गोवंशकी तथा पशुधनकी रक्षाके लिए पहलेसे अब अधिक सतर्क रहनेकी आवश्यकता है। आइये, संगठनमें सहयोग दीजिए और संग-ठित शक्तिके बलसे गोवंशकी रक्षा कीजिए। इस संगठनमें साहसके साथ सहयोगके लिए क्या आप तैयार हैं? एक कविने कहा है—

जो हिचकिचा के रह गया, वह रह गया इधर।
जिसने लगाई ऐड, वह खन्दक के पार था॥

—प्रेषक गोपालसिंह र. सोलंकी, भरूच

भारतके परमहंस और अमेरिकन राजर्षि

(लेखक— श्री विश्वामित्र वर्मा, विषहर जंगल, डभौरा, [रीवा] म. प्र.)

[परमहंस योगानन्द, भारतीय (बंगाली) योगी बहुत वर्ष पूर्व अमेरिका गये थे। वहां बहुतसे बडे नगरोंमें उन्होंने योगसाधन और आत्मसाक्षात्कार सम्बन्धी प्रवचन किये, साधन बताये और बहुतसे जिज्ञासुओंको शिक्षा-दीक्षा दी। अमेरिकाके विख्यात पश्चिमीतटके सुरम्य स्वस्थ वातावरणमें, लॉस एंजिल्स शहरमें उन्होंने आत्मसाक्षात्कार संघ स्थापित किया और बहुत वर्षों तक शिक्षा-दीक्षा देते, योग-प्रचार और आत्मज्योति जगाते हुए उन्होंने भाषण देते हुए स्वस्थ दशामें महाप्रयाण किया।

अमेरिकामें भारतीय योग और वेदान्तका ज्ञान और साधना पहुंचानेका श्रेय, प्रथम स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानन्दके बाद बंगालके योगी परमहंस योगानन्दजीको है। १९१८ में गंगा किनारे, कलकत्ताके निकट दक्षिणेश्वरमें योग सत्संग समाजकी स्थापना करके परमहंसजी अमेरिका गये और देशमें प्रायः सभी प्रान्तोंमें प्रवचन और शिक्षा-दीक्षा देते हुए लॉस एंजिल्समें १९२० में आत्मसाक्षात्कार संघ स्थापित किया। भारतमें योग सत्संग समाजकी लगभग २० शाखायें कलकत्ता, सिरामपुर, बरनगर, रांची, लक्ष्मणपुर, मिदनापुर, गोसाबा, उत्तरपाडा, झारग्राम, पुरी और मद्रासमें हैं। अमेरिकामें तथा मेक्सिको, क्यूबा, कनाडा, ब्रिटिश द्वीप, हालेण्ड, फिनलेण्ड, स्वीडन, नार्वे, फ्रांस, जर्मनी, जेकोस्लोवाकिया, आफ्रिका, हवाई द्वीप, न्यूजीलेण्डमें सब मिलाकर लगभग ६५ केन्द्र हैं जहां नित्य जिज्ञासु नियमित सत्संग, प्रवचन, साधना एवं प्रचारका कार्य करते हैं।

परमहंसजीने " योगीका आत्मचरित्र " Autobiography of A Yogi लिखा है, जिसका मूल्य लगभग २० रुपये है। जो समाज और संघके केन्द्रोंसे, अंग्रेजी, फ्रेंच, डच, स्वीडिश, जर्मन, बंगाली, इटालियन, स्पेनिश, अरबी, हिन्दी, पुर्तगीज, जापानी और आइसलेण्डकी भाषाओंमें प्रकाशित और प्राप्य है। इस सम्बन्धमें " कल्पवृक्ष " में एक लेख कई वर्ष पूर्व छप चुका है।]

अब हम इस लेखमें, बहुत वर्षों तक अमेरिकामें रहते हुए, परमहंसजीके सम्पर्कमें आये हुए एक धनाढ्य अमेरिकन साधकका परिचय देते हैं जिनका नाम जेम्सलिन है और जो साधन निष्ठासे एक अच्छे योगी हो गये हैं और पश्चात् योग-साधनाकाल एवं दीक्षासे इनका नाम राजर्षि जनकानन्द रखा गया।

जेम्सलिन एक किसानका लडका था। माता पिता स्कॉटिश-आयरिश थे। इनके पिता परिवार सहित, सफलताका आलिंगन करने अमेरिका आये थे, ९२ वर्षकी आयुमें १९४५में गत हुए। माताका देहान्त ८८ वर्षकी आयुमें हुआ। जेम्सलिनका जन्म १८९२में हुआ था। जेम्सलिनका घर कन्सास शहर, मिसूरी प्रान्तमें है और इनका तेलका व्यवसाय और ५००० एकड भूमि इलीनोय, टेक्सास, कन्सास और ओक्लाहोमा प्रान्तोंमें है। इस व्यवसायसे इन्हें लगभग बीस लाख डालर (एक करोड रुपये) वार्षिक आमदनी है। पांच सौ एकड भूमिके संतरा, मोसम्बी, नीबू जैसे फलोंकी बाग-वानीसे इन्हें प्रतिवर्ष लगभग पचीस लाख रुपयेकी आय है। इसके अतिरिक्त उनकी बीमा कम्पनी थी और रेलवेका भी काम। इतने वैभवके स्वामी वे अपनी प्रतिभासे हुए। सन् १९०९ के नवें महीनेके नवें दिन, सुबह ९ बजेसे उनके भाग्य निर्माणका मुहूर्त आरंभ हुआ। उस दिन उन्होंने रेलवेमें काम करना शुरू किया और १२ वर्षमें सारे शहरके व्यापारियोंमें अपनी प्रतिभासे अग्रणी हो गये। किसीके प्रति उनके मनमें अनिष्ट भाव कभी नहीं आया। इसी भावुकतासे वे महापुरुष हो गये।

जब वे ६ वर्षके थे तब तथा उनके पिता किसान थे और

उनका १२० एकडका 'फार्म' था। अपने पिताके ६ संतानमें ये चौथे थे और इस उम्र तक ये खेतमें कपास तोडते थे। इसी अवस्थामें इनकी प्रतिभाका उदय हुआ। इस अवस्थामें कोस भर वे स्कूल जाते-आते। इतनी छोटी उम्र होनेके कारण शिक्षकका उन पर ध्यान न हुआ, परन्तु स्कूलमें जो कुछ ये देखते सुनते सब याद कर लेते।

आगे चलकर एक रेलवे स्टेशनपर चार रुपये मासिक पर इन्हें, ऊपरी खर्च चलानेके लिए, दफ्तर की सफाई आदिकी नौकरी मिल गई। १४ वर्षकी उम्रमें इन्होंने व्याकरणकी परीक्षा 'पास' कर ली और अपने एक चचेरे भाईके होटलमें काम करके खाने-पीने और मकान भाडेका खर्च निकाल लेते थे। उनकी आकांक्षा थी रेलवेका डिवीजन सुप्रेन्टेन्डेन्ट बननेकी। पर यह इच्छा कभी न पूरी हुई। इस छोटी उम्रमें यह आकांक्षा! तब उन्हें ३५ डालर मासिक पर एक दूसरी जगह एक नौकरी मिली। फिर दूसरी जगह ६५ डालर मासिक। आगे बढकर सात वर्षोंमें ये बीमा कंपनीके जनरल मैनेजर हो गये। ऑडिटका काम इन्हें मिला और इन्होंने यह काम करते हुए सब कुछ सीख लिया।

इन्होंने कानून पढना चाहा, परन्तु मेट्रिक पास न होनेसे इन्हें स्थान न मिला। तब उन्होंने दिनभर नौकरीके सिवाय रातको मेट्रिकका कोर्स और लॉका कोर्स, दोनों लिया और बादमें अकाउन्टेंटका कोर्स भी लिया। २१ वर्षकी अवस्था तक यह सब पूरा करके वे बैरिस्टर हो गये। इन्हें एक प्रसिद्ध बीमा कम्पनीका काम मिला, हिसाब जांचनेका। आगे ये उसके जनरल मैनेजर होगये। २४ वर्षकी इस उम्रमें इस कामसे उनकी तनख्वाह ५००० डालर वार्षिक हो गई। आगे १२ हजार डालर वार्षिक। कम्पनीके अधिपति किसी कारण कम्पनीको बेचनेको तैयार हुए और जेम्सलिन-मैनेजर स्वयं उसे खरीदनेको तयार हो गये। परन्तु इनके पास पैसा इतना न था कि कई लाख रुपयेकी कम्पनी खरीद लें। एक प्रतिष्ठित व्यक्तिने जेम्सकी कुशलता योग्यता जानकर जमानत पर उन्हें वह कम्पनी दिलवा दी। अब इस कम्पनीको वार्षिक प्रीमियम साठ लाख डालरके आसपास मिलता है, एक करोड तीस लाख डालरका व्यवसाय होता है। जेम्सलिन वह कर्ज जिससे कम्पनी खरीदी थी, तीन-चार सालमें चुका सकते थे, परन्तु इन्होंने व्यापार बढानेके लिए अन्य बडे कामोंमें हाथ लगाया। बीमेका काम कई करोडका हो गया। तभी इन्होंने जंगल, भूमि, बाग और तेलके व्यवसाय लिये।

फरवरी १९३२ में इनका परमहंस योगानन्दजीसे परिचय हुआ। तब इन्होंने परमहंससे क्रियायोग की शिक्षा ली। इनकी साधन निष्ठासे परमहंस बडे प्रसन्न और प्रभावित हुए। एक बार परमहंसने इनको एक पत्रमें लिखा था- 'तुम पूर्वजन्मके, प्राचीनकालके कोई हिमालयवासी हिन्दूयोगी हो, इस जन्ममें पश्चिममें वैभवशाली राजऋषि बने हो।'

जेम्सलिनने सर्व प्रथम भगवद्गीता पढकर, योग साधना के प्रति प्रेरणा पायी थी और संयोग-संस्कारसे परमहंससे मिले।

मार्च १९५२ में परमहंसजीके महानिर्वाणपर राजर्षि जनकानन्द (जेम्सलिन) अध्यक्ष हुए। अपने महाप्रयाणके पूर्व ही परमहंसजीने जनकानन्दको अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था।

जेम्सलिन २० वर्षतक परमहंसजीके सर्वप्रिय एवं आदर्श शिष्य थे। इनका देहान्त 'निमोनियो' हो जानेके कारण हुआ। साधनामें इनको समाधि लग जाया करती थी। ये बडे प्रकृति प्रेमी और उदारचित्त थे। इन्होंने कभी शराब या तमाखू नहीं पी। किसीके विषयमें कुछ भी अनिष्ट विचारना इन्हें तनिक भी सहन न होता था। इनको स्नायुदौर्बल्यका रोग था। इतने बडे मेधावी और कुबेर होकर भी ये घबरा जाते थे। सन् १९३२ में परमहंसजीसे परिचय एवं साधना-शिक्षा पाकर इनका कष्ट दूर हो गया।

इन्होंने कहा है- ध्यानमें मुझे जो शान्ति मिलती है और आनंद प्राप्त होता है, उसके सामने संसारका सब वैभव और ऐश्वर्य तुच्छ है। मैंने जाना है कि ऐश्वर्य, बडप्पन, सम्मान और ऐन्द्रिक इच्छाओंकी पूर्तिमें सन्तोष नहीं मिलता। हमें सुख और आनन्दके स्रोतको खोजना चाहिये— वह है परमात्मा और वह है हमारे भीतर ही। मनुष्य परमात्मा नहीं है, किन्तु मनुष्यमें परमात्मतत्व है, परमात्माका वास है। जब हमें इतना अनुभव हो जाय तो समझ लो सब कुछ मिल गया और सब कुछ मालूम हो गया। संसारमें इस जीवनमें इससे बडी कमाई कुछ भी नहीं है। अपने भीतरकी असली चीजको छोडकर, भूलकर, हम बाहर भ्रान्त भटकते सुखशान्ति ढूंढते हैं, दिया तले अंधेरा इसीका नाम है।

कैसा पागलपन! यह उत्तम ज्ञान हमें भारतसे परमपूज्य परमगुरु परमहंसजीके द्वारा हमें प्राप्त हुआ-हम और हमारा देश धन्य है। इसके मूल्यमें हम हिन्दुस्तानको जो कुछ भी दें वह सब कुछ नहींके बराबर है। आज पश्चिमके लोगोंको

भारतके इसी साधना और ज्ञानकी अतीव आवश्यकता है। यह मैं अपने अनुभवसे कहता हूं आत्मसाक्षात्कार कर लेना इस संघका ध्येय है, यही सबके जीवनका ध्येय है। हम अपने समान ही दूसरोंको जान लें, कि हम सब एक समान हैं, फिर ऊँचनीच, भला बुरा, किसीका इष्ट-अनिष्ट भाव नहीं रह जायगा। यही आत्मसाक्षात्कार है। अन्यथा सारी दुनियां पा जानेपर भी हमें कुछ नहीं मिलता जबतक ईश्वर नहीं मिल जाता। मैंने वह अब पा लिया है, इसके आगे सब कुछ व्यर्थ और तुच्छ है। हम नहीं कह सकते कि ईसा मसीहको जो ज्ञान और अनुभव हुआ वह भारतके किसी परमगुरुसे भिन्न है। कोई किसी भी देशका परमगुरु वही है जिसने आत्मसाक्षात्कार किया हो और सभी परमगुरु एक ही बात कहते हैं।

मैं भारतका सम्मान करता हूं, जिस देशके सन्त महात्माओंने सब कुछ त्याग कर इस महाविज्ञानकी खोज की है, आत्मविज्ञानकी। लोगोंने सैकडों वर्ष तपकरके हम पश्चिमवालोंको यह अमूल्य प्रसाद दिया है, इसके लिए हमें भारतका कृतज्ञ होना चाहिये। अमेरिकाके पास भौतिक ऐश्वर्य है और भारतके पास आत्मिक ऐश्वर्य है। दोनोंके सम्मिलन और समन्वयसे संसार आदर्श सभ्यताकी ओर अग्रसर होगा।

परमगुरु परमहंसजीसे मिलकर ही मुझमें यह महान् परिवर्तन हुआ है कि मैं अपने आपको पहिचान पाया हूं, अपने आपको पा सका हूं और मैं इस अवस्थाको छोडकर सांसारिक झंझटोंमें फंसनेकी इच्छा नहीं करता। ● ● ●

जीवनकी सार्थकता गुणवान् बननेमें है

[लेखक— श्री शिवनारायण सक्सेना, एम. ए., विद्यावाचस्पति सि. प्रभाकर]

परमपिता परमात्माने हमें मानव शरीर दिया है, अच्छे अच्छे कार्य करनेके लिये, गुणवान् बननेके लिये और जीवनको प्रगति पथ पर आगे बढ़ानेके लिये। पर हम जानबूझकर अवनतिकी ओर चलते चले जा रहे हैं। वस्तुका उपयोग ठीकसे न करने पर उसका दाता अप्रसन्न हो जाता है। उसी प्रकार क्या ईश्वर हमसे अप्रसन्न न होगा ! क्यों ? उसकी प्रिय देनका हम गलत ढंगसे उपयोग कर रहे हैं। ईश्वरने हमें बुद्धि दी है, विवेक दिया है, अच्छी बातें देखनेके लिये नेत्र दिये हैं, श्रम और परोपकार करनेके लिये हाथ दिये हैं, बात करनेके लिये वाक्‌शक्ति दी है, जब इतना सब कुछ ईश्वरने हमें दिया है, तब तो उसकी कृपाको मानना ही चाहिये। यह बात जरूर है शरीर क्षणभंगुर है और शीघ्र ही नष्ट हो जावेगा, मृत्यु एक दिन अवश्य आवेगी और अपने साथ हमें ले जावेगी। मृत्युके बाद हमारे कार्य ही स्मृतिके चिन्ह रह जावेंगे, भौतिक सम्पत्ति मकान, दुकान, पुत्र, पुत्री तथा पत्नी आदिसे नाम चलता अवश्य है पर बहुत थोडे समयतक, १०-२० वर्ष लोग नाम याद रखेंगे और फिर पूरी तरहसे भूल जावेंगे। अब यही प्रश्न उठता है कि फिर क्या करें ? किस तरहसे मृत्युके बाद भी सम्मान प्राप्त हो, इतिहासके पन्नों पर स्वर्ण अक्षरोंसे नाम लिखा जावे। उसका विचार करने पर एक ही उपाय समझमें आता है कि अपनेमें गुणोंकी वृद्धि करें। गुणकी सर्वत्र पूजा होती है। चाणक्यने इसी बातको स्पष्ट लिखा है—

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्योऽपि सम्पदः।
पूर्णेन्दुर्न तथा वन्द्यो निष्कलंको यथा कृशः॥

गुण ही सर्वत्र पूजे जाते हैं। बडी भारी सम्पत्तिका आदर नहीं होता। पूर्णिमाका चन्द्र वैसा पूजित नहीं होता, जैसा कि कलंकरहित द्वितीयाका चन्द्र।

हमें अपनी आवश्यकताओंको ठीक ढंगसे देखना चाहिये और साथ ही यह भी देखें कि हममें कौनसी त्रुटियां हैं। त्रुटियोंको विचार कर शनैः शनैः उन्हें कम करें, तो हमारा चरित्र भी गुलाबके फूलकी तरह सुन्दर और सुगन्धित हो जावेगा। दूरसे ही सुगन्धि प्राप्त करके हमें आनन्द होता, है वैसे ही गुणवान् व्यक्ति दूसरोंको भी अपने सत्संग तथा व्यवहारसे लाभान्वित करता है। जो अच्छे व्यक्ति होते हैं उनके हृदयसे सदैव सद्‌कार्योंको ही जन्म मिलता है। श्रेष्ठ व्यक्तिमें नये नये गुण जैसे ही अंकुरित होते जाते हैं, वैसे ही सोनेमें सुगन्ध आती जाती है। यदि पापी और दुष्ट व्यक्ति संसारको धोखा देनेके लिये और सीधे व्यक्तियोंको ठगनेके लिये किसी गुणको अपनाते हैं तो वे अनर्थ ही करते हैं और गुण अवगुणके रूपमें बदल जाता है। सन्त और महात्माओंके प्रति सभी श्रद्धा तथा सम्मान व्यक्त करते हैं, पर कोई चोर साधुका वेष रख ले तो क्या उससे किसी भलाईकी आशा की जासकेगी ? पवित्र जलवाली गंगा नदीको ही देखिये, उसमें स्नान करनेके लिये लोग दूर दूरसे जाते हैं पर जब वह समुद्रमें विलीन होजाती है फिर उसके खारे जलको कोई पसन्द नहीं करता। वर्तमान समयमें धनवान् व्यक्ति जिस प्रकार प्रशंसित होते हैं, वैसे ही गुणवान् जिनके पास गुणोंकी पूंजी होती है तीनों कालोंमें लोगोंकी श्रद्धा प्राप्त करते हैं, शताब्दियां बीत जाती हैं पर उनका नाम इस प्रकार लिया जाता है जैसे कल ही उनकी मृत्यु हुई हो।

राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, ईसा, विवेकानन्द, दयानन्द, गान्धीजी और डॉ० राजेन्द्रप्रसादका नाम बच्चे बच्चेको मालूम है उनमें और हममें क्या अन्तर है ? वह भी मानव थे और हम भी मानव हैं, नाक, कान, आँख, मुख, विभिन्न कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ उनके थीं, वही आपके हैं, फिर आपको कोई नहीं जानता उन्हें सब पूजते हैं। तुलना करनेपर एक ही अन्तर समझमें आता है और वही प्रमुख है। उनके जीवनमें गुणोंकी खान थी और यहां दोषोंका भण्डार है। महापुरुषों जैसा बननेके लिये विभिन्न गुणोंको अपनाना होगा। अच्छी अच्छी बातोंको ग्रहण करना होगा। गुणोंके सम्मुख आडम्बर या दिखावटकी कोई आवश्यकता नहीं है, व्यक्ति तो गुणोंकी पूछ करता है गायको स्नान करवाकर उसके सींगपर रंग करने, रंगबिरंगे फूलपत्ती बनाने, सुन्दर कपड़ा उढा देने,

तथा पैरोंमें घुँघरू और गलेमें घन्टा बांध देनेसे उसके क्षणिक सम्मानमें भले ही वृद्धि कर दी जावे, पर अगर वह दूध नहीं देती तो उसे इतना अधिक शृंगार करनेके बाद भी कोई नहीं खरीदेगा। नीतिकारने महाभारतमें छह दोषोंको त्याग कर छह गुणोंको अपनानेकी बात कही है। छह गुणोंको अपनानेसे गुणवान् बना जा सकता है। आइये, पहले उन दोषोंको देख लें जो प्रगतिमें बाधक हैं और बादमें अच्छाइयों पर विचार करें—

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्याः भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता॥

—जो ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहे उस मनुष्यको ये छह दोष छोड़ देने चाहिये— निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता।

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः॥

पुरुषोंको इन छह गुणोंको कभी न छोडना चाहिये— सत्य, दान, आलस्य हीनता, दूसरोंमें दोष न देखना, क्षमा और धैर्य।

गुणवान् व्यक्ति सदैव सन्तोषी और सुखी रहता है उसका स्वभाव ही दूसरोंकी भलाई करना तथा दूसरोंके सुख और विकासमें आनन्दित होनेका रहता है। कभी भी दूसरोंकी न तो बुराइयाँ करता है और किसीके द्वारा बुराइयाँ की जा रही हों तो सुनी अनसुनी कर देता है अथवा उठकर कहीं चला जाता है। श्रेष्ठ व्यक्ति सदैव यही प्रयत्न करते हैं कि दूसरोंमें जो अवगुण हों वह विदा लें और उनके स्थानपर गुणोंकी स्थापना हो। उसका हृदय विशाल हो जाता है, उसकी वृत्ति उदारताकी बनती है और सदैव दूसरेके कष्टोंको दूर करनेमें सौभाग्य ही समझता है। यदि किसी परिवारमें एक भी गुणवान् पुत्रका जन्म हो, या अपनेको गुणवान् बना ले तो उस व्यक्तिकी ख्याति तो बढती ही है साथ ही परिवार और पूरे कुलको यशकी प्राप्ति होती है, एक चन्द्रमा और सूर्य अपने प्रकाशसे जो कार्य करते हैं उतना कार्य विद्युत्के सहस्रों-बल्ब या तारागण भी नहीं कर पाते। उसी प्रकार अनेक सन्तानोंकी अपेक्षा एक ही सुशील सुपुत्रकी विवेकशील व्यक्ति कामना करते हैं।

जीवनको सादगीसे व्यतीत करनेवाले, नम्र स्वभाववाले, निडर, शान्तिप्रिय और आशावादी व्यक्तियोंकी हर बात लोग माननेको तैयार हो जाते हैं, संकटके समय उन्हें सभी व्यक्तियोंके द्वारा भरपूर सहायता भी मिल जाती है। मानव-का विकास और ह्रास स्वयंके कर्मोंसे ही होता है। जो जैसे काम करता है, वह उतना ही ऊँचा उठता है और खराब काम करनेवाला नीचे गिरता है। खानमें काम करनेवाले मजदूर सदैव नीचे ही रहते हैं, कुआं खोदनेवाले नीचे ही कार्य करते हैं पर मन्दिर, भवन या अन्य ऐसा ही कोई भवन जब बनाया जाता है तो उस पर कार्य करनेवाले श्रमिक सबको दिखाई पडते हैं। व्यक्ति धनधान्यसे पूर्ण हो, शक्ति सम्पन्न, ज्ञान, स्वस्थ शरीर तथा अच्छे कुलमें जन्म हुआ हो, फिर भी गुणोंके अभावमें निस्तेज और फीका ही रहता है। कोयलोंमें अग्निका तत्व जब तक रहता है तभी तक तो चमक रहती है और उस गर्मीसे सब लाभ उठा लेते हैं। अग्नितत्वके समाप्त होते ही सिवाय राखके ढेरके और शेष क्या रहता है? राखके ढेरको हाथसे रगडने और पैरसे कुचलनेमें भी किसी प्रकारका डर नहीं लगता। वैसे ही गुणहीन व्यक्ति मुर्दा माना जा सकता है, वह कायर है, निर्लज्ज है, डरपोक है और निराशावादी है पलपलपर उसे ठोकरें खानी पडती हैं।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि एक दो गुणोंके अंकुर जैसे ही हृदयमें प्रस्फुटित हुये, लोगोंने बात पूछी कि हममें गर्व आ जाता है, गर्वका आगमन गुणोंमें विकास नहीं होने देता, आगे सोचने, समझने और बढनेकी कोई आवश्यकता ही अनुभव नहीं करता और वहीं फंसा रहता है। विद्वान् और पंडित वही कहलाते हैं जिनके पास विपुल धन संपत्ति भरी हो, लम्बी चौडी उपाधियाँ प्राप्त कर ली हों, चारों ओर कीर्तिकी ध्वजा लहलहा रही हो। फिर भी गर्व छू तक नहीं जाता है। अतः गर्वको छोडकर अपने हृदयको टटोलना चाहिए, एक एक अवगुणको बाहर निकालते जावें तो उनके स्थानपर गुण आते जावेंगे। अथवा अपनेमें गुणोंको बढाते जावें तो अवगुण स्वतः ही किनारा करते जावेंगे, सत्यका गुण जैसे ही आता है असत्य भागता है। हमें नीतिकारकी इस बातको मानकर प्रगतिके पथ पर आगे बढना चाहिए।

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः।
किं नु मे पशुभिस्तुल्यं किं नु सत्पुरुषैरिति॥

—मनुष्यको सदा अपने आचरणकी परीक्षा करते रहना चाहिए कि मेरा आचरण पशुओंके समान है या सत्पुरुषोंके। अतः अपनेमें गुणोंकी अधिकसे अधिक वृद्धि कीजिए। तभी आपकी ख्याति बढ सकेगी।

संसारपर विजय कौन प्राप्त कर सकता है ?

[लेखक— श्री भास्करानन्द शास्त्री, सिद्धान्त-वाचस्पति, प्रभाकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी (गुजरात)]

[गताङ्कसे आगे]

(३) सम्यक् व्रत-विशेषाच्च

ऋषिका युधिष्ठिरजीके प्रति तीसरा उपदेश है– ' सम्यक् व्रत–विशेषाच्च ' अर्थात् अच्छी प्रकार सम्यक् रूपसे व्रतोंके पालन करनेसे मनुष्य विश्वविजयी बनता है। जिसके करनेसे जीवनका उत्थान हो वह व्रत कहलाता है। यजुर्वेदके १९ वें अध्यायके ३० वें मन्त्रमें कहा है—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥
(य० १९।३०)

व्रतसे दीक्षा मिलती है, दीक्षासे दक्षिणा, दक्षिणासे श्रद्धा और श्रद्धासे सत्यकी प्राप्ति होती है। व्रतोंमें तीन व्रत अर्थात् सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य ये मुख्य हैं इनके ही अन्दर प्रायः सम्पूर्ण व्रतोंका समावेश हो जाता है।

सत्य

यास्कमुनिने सत्यकी निरुक्ति करते हुये लिखा है—
सत्यं कस्मात्। सत्सु तायते। सत्प्रभवं भवतीति वा।

सत्य कैसे ? ' सत्सु ' सज्जनोंमें ' तायते ' विस्तीर्ण होता है, ' सत्प्रभवं ' या सज्जनोंसे ही उसकी उत्पत्ति है, अतः वह ' सत्य ' कहलाया।

शास्त्रोंमें अनेक स्थलोंपर सत्यके महिमाका वर्णन मिलता है। यथा—

सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव।
न पावनतमं किञ्चित्सत्यादध्यगमं क्वचित् ॥
(म. शां. अ. २९९-३१)

सत्यरूपं परं ब्रह्म सत्यं हि परमं तपः।
सत्यमूलाः क्रियाः सर्वाः सत्यात्परतरं नहि ॥
(शि. पु. उमा. सं. ५ अ. १२ श्लोक २३)

भूमिः कीर्तिर्यशो लक्ष्मीः पुरुषं प्रार्थयन्ति हि।
सत्यं समनुवर्तन्ते सत्यमेव भजेत्ततः ॥
(वा. रा. अयो. स. १०९।१३)

चत्वार एकतो वेदाः साङ्गोपाङ्गाः सविस्तराः।
स्वधीता मनुजव्याघ्र सत्यमेकं किलैकतः ॥
(म. वन. अ. ६४–१७)

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः। येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥
(मु. मु. ३ खं. १ मं. ६)

न हि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।
नहि सत्यात् परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥
(सुभाषित)

महात्मा कबीरदासजीने भी कहा है—

साँच बरोबर तप नहीं झूठ बरोबर पाप।
जाके हिरदे साँच है ताके हिरदे आप ॥

इस प्रकार सत्यके महिमाका वर्णन अनेक स्थलोंपर मिलता है। जिन–जिन लोगोंने सत्यको अपने अन्दर धारण किया कितने महान् श्रेष्ठ बने इतिहास ही उनका साक्षी है।

एक समयकी बात है महात्मा अब्राहम लिङ्कन जब रात्रीमें सारे दिनका हिसाब मिलाने लगे, उस समय उनको पता लगा कि एक स्त्री ३ पेन्स अधिक दे गई है, उनके स्थानसे उस स्त्रीका मकान ८ मीलकी दूरी पर था। महात्मा लिङ्कन उसी रात्रीमें ११ बजे उस स्त्रीके मकानपर पहुँचते हैं और तीन पेन्स जेबसे निकालकर उस देवीको देते हैं। उस देवीने कहा ' आपने इस छोटीसी राशिके लिये इतना कष्ट क्यों किया। ' लिङ्कनने कहा– ' बहिन ! इन पैसोंसे मेरी जेब जल रही थी, अपनी रक्षाके लिये ही मैंने इस रात्रीमें आपको कष्ट दिया है, इसके लिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ। ' उस देवीने लिङ्कनके सिरपर हाथ फेर कर कहा ऐसे ही सच्चे और कर्तव्यपरायण बच्चे देश और जातिके भूषण हुआ करते हैं। इस सत्यको अपने अन्दर धारण करनेके कारण ही महात्मा

लिङ्कन आगे चलकर संयुक्त राज्य अमेरिकाके महान् राष्ट्रपति बने।

सदा सत्य बोलो

स वै सत्यमेव वदेत्। एतद्ध वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यम्। तस्मात्ते यशो यशो ह भवति य एवं विद्वान् सत्यं वदति॥ (शतपथ ब्रा. १।१।१।६–५)

सत्य ही बोलो। देवता निश्चय ही सत्यका आचरण करते हैं। इसीसे वे यश पाते हैं। जो विद्वान् सत्यको बोलता है वह भी यश पाता है।

हँसीमें भी झूठ न बोलो

एक समय भगवान् बुद्ध राजगृहके वेणुवनमें थे। राहुल अम्बलट्ठिकामें थे। एक दिन शामको भगवान् राहुलके यहाँ पहुँचे। राहुलने देखकर आसन बिछाया और पैर धोनेके लिये लोटेमें पानी ला रखा। पैर धोकर भगवान् आसन पर आ बैठे। उन्होंने राहुलसे कहा—

"राहुल! लोटेमें बचे थोड़ेसे पानीको देखता है न?"

"हाँ, भन्ते!"

"राहुल, ऐसा ही थोड़ा श्रमणभाव उन लोगोंमें है, जिन्हें झूठ बोलनेमें लज्जा नहीं आती।"

जलको फेंककर लोटेको औंधाकर भगवान्ने कहा— "राहुल, ऐसा ही औंधा श्रवणभाव उन लोगोंका है, जिन्हें झूठ बोलनेमें लज्जा नहीं आती।"

लोटेको सीधा करके भगवान्ने कहा– 'ऐसा ही खाली तुच्छ श्रमणभाव उन लोगोंका है, जिन्हें झूठ बोलनेमें लज्जा नहीं आती। जिसे जानबूझकर झूठ बोलनेमें लज्जा नहीं आती, उसके लिये कोई भी पाप कर्म अकरणीय नहीं, ऐसा मैं मानता हूँ। इसलिये राहुल, हँसीमें भी झूठ नहीं, बोलूँगा, यह सीख लेनी चाहिये।'

(मज्झिमनिकाय अम्बट्टिक–राहुलोवाद सुत्तन्त। २।२।१)

पारसी भी सत्यको सबसे बढ़ कर मानते हैं।

अषा : सत्य सबसे बढ़कर

अषा, सत्य सबसे बढ़कर है। (फ्रवर्दीन यश्त् २६)

अहुरमज्द कहता है कि जो सच्चे हृदयसे अषा की, सत्यकी प्रशंसा करता है वह मेरी ही प्रशंसा करता है, समुद्रकी प्रशंसा करता है, पृथ्वीकी प्रशंसा करता है, पशुओंकी प्रशंसा करता है वनस्पतियोंकी प्रशंसा करता है। वह सभी अच्छी चीजोंकी प्रशंसा करता है। (यस्न २१–३)

हमारे घरोंमें सत्यकी प्रतिष्ठा हो असत्य हमसे दूर हो। (वही, ६०–५)

हम सत्य कर्म करें

हुमतनाँम हुख्तनाँम् हवरश्तनाँम्। (यस्न हा ३५–२)

हम पवित्र विचार करें, पवित्र बोलें, पवित्र काम करें। हमारे विचार, हमारे वचन और हमारे कर्म सब पवित्र हों।

तत् अत वहरीमइदी अहुरा मज्दा
अषा स्रीरा ह्यत् ई मइनिमदिचा
वओचोइमाचा वॅरॅजिमाचा
या हातॉम् श्यओथननॉम्
वहिश्ता ख्यात् उबोइब्या अहुब्या॥
(यस्न हा ३५–३)

हे परमप्रभु परमेश्वर तेरा सत् हमारे साथ हो। हम केवल वही सोचना चाहते हैं वही कहना चाहते हैं और वही करना चाहते हैं जिससे इहलोक और परलोक दोनोंमें हमारा कल्याण हो।

यहूदी धर्म भी कहता है— "जो यहोवा (परमात्मा) की विधिपर चलता हो, यहोवाके नियमोंका पालन करता हो सच्चा हो, सच्चे काम करता हो वही धर्मात्मा है।

(यहेजकेल १८।५–८)

इस्लामधर्ममें भी सच बोलो और सही बोलो इन बातों पर अधिक जोर दिया गया है।

"तुम सचाईको लाजिम पकड़ो और हमेशा सच ही बोलो, क्योंकि सच बोलना नेकीके रास्ते पर डाल देता है।

(बुखारी और मुसलिम)

जो अल्लाहसे मुहब्बत चाहता है उसे चाहिये कि जब बात करे तो हमेशा सच बोले, अमानतमें खयानत न करे और पड़ोसियोंके साथ अच्छा बर्ताव करे। —बैहकी

यह बहुत ही खयानत है कि तुम अपने भाईसे कोई झूठी बात बयान करो, जब कि वह तुम्हें सच्चा समझता हो।

—अबीदाऊद

अतः मनुष्यको सत्याचरण करते हुये अपनेको सुधारनेका प्रयत्न करना चाहिये। सच्चा आदमी कभी उद्विग्न युक्त नहीं होता, कभी परेशान नहीं होता। वह साहसी होता है। वह कर्मठ होता है। जो कहता है सो करता है। व्यर्थ बकवाद नहीं करता लोग उसका सम्मान करते हैं पर उसमें घमण्ड नहीं आता।

अहिंसा

'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत् सन्निधौ वैरत्यागः' यह योगदर्शनका सूत्र है। अहिंसाकी प्रतिष्ठा अर्थात् सिद्धि होनेपर मनुष्य प्राणियोंसे वैर करना छोड देता है। यह बहुत ऊँचा व्रत है। इसका पालन संसारमें विरले ही जन कर पाते हैं। महापुरुषोंमें ही इस श्रेष्ठ व्रतका विकास हो पाता है। यथा–

अनूप शहरमें एक ब्राह्मणने महर्षि दयानन्दके वेदविरुद्ध बातोंके प्रचण्ड खण्डनसे रुष्ट होकर पानमें विष दिया। स्वामीजीने न्योली कर्मद्वारा उसे अपने शरीरसे निकाल दिया और स्वस्थ हो गये। तहसीलदार सैयद मुहम्मदको जब इस बातका पता लगा तो वह उस व्यक्तिको गिरफ्तार करके स्वामीजीके पास ले आये, परन्तु स्वामीजीने यह कहकर कि– "मैं दुनियाँको कैद कराने नहीं आया, बल्कि कैदसे छुडाने आया हूं" उसे छुडा दिया, यह थी अहिंसा महर्षि दयानन्दकी।

एक समय भगवान् गौतमबुद्ध जेतवनमें विहार करते थे। उस समय राजा प्रसेनजित्‌के राज्यमें एक डाकू था अंगुलीमाल। बडा भयानक, बडा खूँखार! मारकाटमें उसे मजा आता था। दयाका उसमें नाम भी नहीं था। भगवान् बुद्ध श्रावस्तीसे पिण्डचार करके उसी रास्ते चले, जहाँ डाकू अंगुलीमाल रहता था। ग्वालोंने, किसानोंने, राहगीरोंने भगवान्‌से कहा– "हे भन्ते! मत जाओ इस रास्ते। अंगुलीमाल डाकू रहता है इधर। वह मनुष्योंको मारमारकर अंगुलियोंकी माला पहनता है। बीस, तीस, चालीस, पचास आदमियोंके गोल भी उसके हाथ पड जाते हैं।"

भगवान् मौन धारण कर चलते रहे।

अंगुलीमालने दूरसे ही भगवान्‌को आते देखा। सोचने लगा– आश्चर्य है जो! पचासों आदमी भी मिलकर चलते हैं, तो मेरे हाथमें पड जाते हैं, पर यह श्रमण अकेला ही चला आ रहा है। क्यों न इसे जानसे मार दूँ? ढाल, तलवार और तीर, धनुष लेकर वह भगवान्‌की तरफ दौड पडा। फिर भी वह उन्हें नहीं पा सका।

अंगुलीमाल सोचने लगा— आश्चर्य है। महा आश्चर्य है! मैं दौडते हुये हाथीको, घोडेको, रथको दौडकर पकड लेता हूँ पर मामूली चालसे चलनेवाले इस श्रमणको नहीं पकड पा रहा हूँ।

खडा होकर भगवान्‌से बोला— "खडा रह श्रमण!"

"मैं स्थित हूँ अंगुलीमाल! तू भी स्थित हो।"

"श्रमण! जाते हुये तू कहता है— 'स्थित हूँ' और मुझ खडे हुयेको कहता है— 'अस्थित'?"

"अंगुलीमाल! सारे प्राणियोंके प्रति दण्ड छोडनेसे मैं सर्वदा स्थित हूँ। तू प्राणियोंमें असंयमी है, इसलिये तू अस्थित है।"

अंगुलीमाल पर भगवान्‌की बातोंका असर पडा। उसने निश्चय किया कि मैं चिरकालके पापोंको छोडूंगा और अपनी तलवार और हथियार फेंक कर, भगवान्‌के चरणोंकी वन्दना कर उनसे प्रव्रज्या माँगी। भगवान्‌ने "आ भिक्षु!" कहकर उसे दीक्षा दी। यह थी महात्मा गौतमबुद्धमें अहिंसाकी प्रतिष्ठा।

परमपिता परमात्मा वेद द्वारा मनुष्यको उपदेश देता है–

पशून् पाहि, गां मा हिंसीः, अजां मा हिंसी।
आविं मा हिंसिः, इमं मा हिंसीः, द्विपादं पशुम्।
मा हिंसीः एकशफं पशुम्, मा हिंस्यात् सर्वा-
भूतानि॥ (यजुर्वेद १३।४७।४८)

पशुओंकी रक्षा करो, गायको मत मारो, बकरीको मत मारो, भेडको मत मारो, दो पैरवाले मनुष्य, पक्षी आदिको मत मारो। एक खुरवाले घोडे, गदहे आदि पशुओंको मत मारो। किसी भी प्राणीकी हिंसा न करो।

बेचारी चिडिया

एक आदमी मुहम्मद साहबके पास आकर बोला— ऐ रसूलल्लाह! मैं जंगलसे आ रहा था। मैंने चिडियोंके बच्चोंकी आवाज सुनी। मैंने उन्हें पकडकर अपनी दरीमें लपेट लिया। उसकी माँ फडफडाने लगी, तो मैंने दरी खोल दी। वह भी आकर अपने बच्चोंमें गिर गयी मैंने उसे भी दरीमें लपेट लिया। वे सब चिडियाँ इस दरीमें हैं।

मुहम्मद साहबने उसे हुकुम दिया— "जाओ, इसी दम जाकर चिडिया और उसके बच्चोंको वहीं छोड आओ, जहाँसे तुम उन्हें पकड लाये हो। उसने वैसा ही किया– (अबी दाऊद)

किसीको मत सताओ

राबिआ एक बार जंगलमें थी। जंगलके पशु पक्षी उसे

चारों ओरसे घेरे खडे थे। तभी उधरसे संत हसनबसरी आ निकले। उन्हें देखते ही पशु पक्षी डरकर इधर उधर भागने लगे। हसनने पूछा— "बहन ! ये पशु पक्षी तुझे तो प्रेमसे घेरे खडे थे और मुझे देखते ही भागने लगे। ऐसी क्या बात है ?

"भाई तुमने खाया क्या था ?"

हसन— गोश्त !

राबिआ— जब तुम इन पशुओंको खाते हो, तो ये तुमसे डरकर क्यों न भागें ?

वह बेचारा ऊँट

एकबार मुहम्मद साहब अंसारी सहाबीके बगीचेमें गये। वहां एक ऊँट था। जब ऊँटने मुहम्मद साहबको देखा, तो वह जोर जोरसे डकराया और दर्दभरी आवाज लगाई। उसकी आँखोंसे आँसू भी गिरने लगे। मुहम्मद साहबने उसे पुचकारा। उस पर हाथ फेरा, तब वह चुप हुआ। मुहम्मद साहबने उसके मालिकको बुलाकर कहा– "इस बेचारे बेजवान ऊँटके बारेमें तुम उस अल्लाहसे डरते नहीं, जिसने तुम्हें इसका मालिक बनाया है ? इसने मुझसे शिकायत की है कि तुम इसको भूखा रखते हो और ज्यादा काम लेकर तुम इसको बहुत दुःख पहुँचाते हो।

इस प्रकार जितने बडे श्रेष्ठ पुरुष हुये हैं उन्होंने अहिंसाको अपने जीवनका एक अङ्ग बनाया तभी वह बडे बन सके।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद्बिभर्ति तस्मिन्देवा अधि विश्वे समोताः। प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम्॥ अथ. कां. ११।५।२४

जब ब्रह्मचारी वेदाध्ययनसे प्रकाशित होता है, उसमें दिव्य गुण आते हैं, तभी विद्वान् उससे मित्रता करते हैं। और वह प्राण दीर्घजीवन, उत्तमवाणी, पवित्र मन, शुद्ध हृदय, परमात्मज्ञान और श्रेष्ठ प्रजाको धारण करता है। इन्हीं गुणोंकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्य व्रतका पालन किया जाता है।

ब्रह्मचारी तीन प्रकारके होते हैं, वसु, रुद्र और आदित्य संज्ञावाले। वसु ब्रह्मचारी वह ब्रह्मचारी है जो २५ वर्ष पर्यन्त पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत पालन करता है और प्राणोंको वशमें करनेवाला होकर पुनः गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होता है। दूसरा ब्रह्मचारी ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रतको धारण दुष्टोंको अपने तेजसे रुलानेवाला होता है। और तीसरा ब्रह्मचारी वह ब्रह्मचारी है जो ४८ वर्ष पर्यन्त सम्पूर्ण वेदों और शास्त्रोंका अध्ययन करके पूर्ण ब्रह्मचारी होकर सूर्यकी तरह विश्वको प्रकाशित कर देता है। कोई कोई आचार्य दो कोटिके ब्रह्मचारी मानते हैं एक उपकुर्वाण दूसरा नैष्ठिक। उपकुर्वाण ब्रह्मचारी वह ब्रह्मचारी है जो २५,४४ अथवा ४८ वर्ष ब्रह्मचर्यका ठीक प्रकार पालन करके पश्चात् गृहस्थाश्रम धर्मका पालन करता हुआ गृहस्थी बनता है। दूसरा वह ब्रह्मचारी है जो जीवन पर्यन्त अत्यन्त कठिन, महान् ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करता है वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहलाता है। महाबली हनुमान्, भीष्म और महर्षि दयानन्द इसी नैष्ठिक ब्रह्मचारी की गणनामें आते हैं।

ब्रह्मचारी ही इस पृथ्वी और द्युलोक दोनोंको पुनः पुनः अपने अनुकूल बनाता हुआ चलता है। ब्रह्मचर्य और तपसे राजा राष्ट्रकी रक्षा करता है। आचार्य ब्रह्मचर्यके साथ रहनेवाले ब्रह्मचारीकी इच्छा करता है। ब्रह्मचारीके अन्दर कितनी शक्ति आजाती है इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं।

सरदार विक्रमसिंहने जालन्धरमें एक दिन ऋषिवर–दयानन्दजीसे कहा 'भगवन् ! शास्त्रोंने ब्रह्मचर्यके महाबलकी बहुत प्रशंसा की है, किन्तु आपमें मुझको वह बल प्रतीत नहीं होता।' ऋषिवर उस समय चुप रहे, किन्तु जब वह सरदार दो घोडोंकी बग्घीपर सवार हुये तो महाराजने चुपकेसे जाकर उस बग्घीका पिछला एक पहिया पकड लिया। कोचवानने घोडोंको बढाना चाहा परन्तु वे न बढे। उसने फिर उनके चाबुक मारे, घोडोंने भी बहुतेरा बल लगाया परन्तु वे टससे मस न हो सके। कोचवान और सरदार महोदयने पीछे मुडकर देखा, तो महर्षिको गाडीका पहिया पकडा पाया। आदित्य नैष्ठिक ब्रह्मचारीके अद्भुत बलको देखकर सरदार विक्रमसिंह विस्मित होकर यतीन्द्रसे बोले–'गुरुदेव ! आज मैंने सचमुच उस ब्रह्मचर्यके महत्वको जान लिया।'

इस प्रकार सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्यादि श्रेष्ठ व्रतोंको सम्यक रूपसे पालन करने और अपने अन्दर धारण करनेसे मनुष्य विश्व विजयी बनता है।

[क्रमशः]

दयानन्द वचनामृत

हे विज्ञानस्वरूप ! अज्ञानके दूर करनेवाले ! विज्ञान, धन और चक्रवर्ती राज्य धर्मात्माओंको देते रहिये, कि जिससे जो आपके उपासक लोग हैं, वे कभी दुःखको न प्राप्त हों।

इक्ष्वाकुसे लेकर कौरव पांडव तक सर्व भूगोलमें आर्योंका राज्य और वेदोंका थोडा थोडा प्रचार आर्यावर्तसे भिन्न देशोंमें भी रहता था।

अब अभाग्योदयसे और आर्योंके आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोधसे अन्य देशोंके राज्य करनेकी तो कथा ही क्या किन्तु, आर्यावर्तमें भी आर्योंका अखण्ड, स्वतंत्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं।

दुर्दिन जब आता है तब देशवासियोंको अनेक प्रकारका दुःख भोगना पडता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।...... परन्तु भिन्न भिन्न भाषा, पृथक् पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अतिदुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्परका पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिए जो कुछ वेदादि शास्त्रोंमें व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं उसीको मान्य करना भद्रपुरुषोंका काम है।

जो परमात्मा अपहतपाप्मा सर्व पाप, जरा, मृत्यु, शोक, क्षुधा, पिपासासे रहित, सत्यकाम, सत्यसंकल्प है, उसकी खोज और उसीको जाननेकी इच्छा करनी चाहिये।

जब इन्द्रियां अर्थोंमें, मन, इन्द्रियों और आत्मा मनके साथ संयुक्त होकर प्राणोंको प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कर्मोंमें लगाता है तभी बहिर्मुख हो जाता है, उसी समय भीतरसे अच्छे कामोंमें आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मोंमें भय, शंका, लज्जा, उत्पन्न होती है, वह अन्तर्यामी परमात्माकी शिक्षा है, जो कोई इस शिक्षाके अनुकूल वर्तता है वही मुक्तिजन्य सुखोंको प्राप्त होता है और जो विपरीत वर्तता है वह बन्ध जन्य दुःख भोगता है।

नित्यप्रति न्यूनसे.न्यून दो घंटे पर्यन्त मुमुक्षु ध्यान अवश्य करें जिससे भीतर मन आदि पदार्थ साक्षात् हों।

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पांच क्लेशोंको योगाभ्यास विज्ञानसे छुडाके ब्रह्मको प्राप्त होके मुक्तिके परमानन्दको भोगना चाहिए।

यह निश्चय है कि जैसे अग्निमें इन्धन और घी डालनेसे वह बढता जाता है, वैसे ही कामके उपभोगसे काम कभी शान्त नहीं होता, किन्तु बढता ही जाता है, इसलिये मनुष्यको विषयासक्त कभी न होना चाहिये।

इतना अवश्य चाहिये कि मद्य, मांसका ग्रहण कदापि भूल कर भी न करे। मांस भक्षण करने, मद्य पीने, परस्त्री गमन करने आदिमें दोष नहीं यह कहना छोकडापन है। क्योंकि बिना प्राणियोंके पीडा दिये मांस प्राप्त नहीं होता और बिना अपराधके पीडा देना धर्मका काम नहीं।

एक गायके शरीरसे दूध, घी, बैल, गाय उत्पन्न होनेसे एक पीढीमें चार लाख पचहत्तर सहस्र छः सौ मनुष्योंको सुख पहुँचता है, वैसे पशुओंको न मारें, न मारने दें। बकरीके दूधसे पच्चीस हजार नौ सौ बीस आदमियोंका पालन होता है, वैसे हाथी, घोडे, ऊंट, भेड, गदहे आदिसे भी बडे उपकार होते हैं। इन पशुओंको मारनेवालोंको सब मनुष्योंकी हत्या करनेवाले जानियेगा।

—प्रेषक ब्र. शंकरलाल पिस्तोलवाला, भरुच